॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज के ४३ वें वार्षिकोत्सव पर

प्रसाद

वेद के आख्यानों का यथार्थ स्वरूप

लेखक

वैद्य रामगोपाल शास्त्री

(सहयोगी) **प्रो० साधुराम एम० ए०**

प्रकाशक

ओम्प्रकाश सुनेजा, मन्त्री—आर्यसमाज करोल बाग, दिल्ली-५

१७ वैशाख, वि० सं० २०२९ २९ अप्रैल, १९७२

विषयानुक्रमणिका

			पृष्ठ
ाक्कथन	......	......	
ूमिका	......	......	
ुरूरवाः ग्रौर उर्वशी का ग्राख्यान		......	१
त्रित का ग्राख्यान—	......	......	६
ग्रात्रेयी अपाला का ग्राख्यान	......	......	१८
सरमा-पणि आख्यान	......	......	२४
वसिष्ठ की उत्पत्ति	......	......	३३
दध्यङ् (दधीचि) की ग्रस्थियें तथा अश्वियों को मधुविद्या का उपदेश	......	......	३६
अगस्त्य तथा लोपामुद्रा का आख्यान		......	४३

प्राक्कथन

आर्यसमाज, करोल बाग के वार्षिकोत्सव के सम्बन्ध में पिछले वर्ष की गति-विधियाँ :—

१, आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक का अभिनन्दन किया गया जिसमें उन्हें कुछ रेशमी वस्त्र, घड़ी और ६०००) से अधिक रुपये थैली के रूप में भेंट किये गए।

२. दैनिक तथा साप्ताहिक सत्सङ्ग में कई एक विशिष्ट विद्वानों द्वारा वेद प्रचार कराया गया। अजमलखाँ पार्क में भी वेद सम्बन्धी व्याख्यान कराए गए।

३. आर्यसमाज के विशाल भवन में अतिथियों के लिये अतिथि-शाला बनी हुई है, जिसमें दिल्ली सरीखे महँगे नगर में अतिथियों की सुविधा के लिये आवास, बिजली, पंखा, जल आदि का निःशुल्क प्रबन्ध है। इसी भवन के एक कक्ष में पुस्तकालय और वाचनालय हैं, जिनमें हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक समाचार पत्र और पत्रिकाओं से जनता को बहुत लाभ पहुँचता है।

४. इसी भवन में एक विशाल मंदिर है, जिसे भिन्न-भिन्न संस्थाओं को उनके उत्सवों तथा सत्सङ्ग आदि के लिये निःशुल्क दिया जाता है।

(५). निःसहाय व्यक्तियों को भोजन और वस्त्रादि भी दिये जाते हैं।

(६) पिछले वर्ष वयोवृद्ध आर्यसमाज के सदस्यों का अभिनन्दन किया गया था।

(७) समाज के योग्य पुरोहित, पं० विद्या भास्कर जी द्वारा कई संस्कार और शुद्धियाँ भी कराई गई।

(८) दिसम्बर, १९७१ मास के भारत-पाकिस्तान युद्ध में पुरुष तथा स्त्री समाज की ओर से २२००)रु० रोक और स्वर्ण आभूषण राष्ट्ररक्षा कोष में भेंट दिये गए।

(९) ऋषि दयानन्द जी के सिद्धान्तों के प्रचार के लिये छात्र-छात्राओं में वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ कराई गई और योग्य छात्रों और छात्राओं को पुरस्कार दिये गए।

(१०) समाज के वयोवृद्ध कर्मठ उपप्रधान श्री बंसीलाल जी अपना सारा समय अवैतनिक रूप से समाज-सेवा में लगा रहे हैं, और उन्होंने मातृवत् समाज को सँभाला हुआ है।

(११) वेद-गोष्ठियों के लिये समाज के अधिकारियों ने श्री विशम्भर दास जी उपप्रधान को संयोजक नियत किया हुआ है, जो सुचारु रूप से उन्हें चला रहे हैं, और समाज द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की भेंट तथा जल-पानादि से विद्वानों का समाज की ओर से सम्मान करते हैं।

(१२) इस समय समाज के स्त्री तथा पुरुष सहायकों और सदस्यों की संख्या ३५० है।

निवेदक
ओम्प्रकाश सुनेजा मन्त्री

वेद-गोष्ठी

१९६९ के फरवरी मास में दिल्ली के कई कॉलेजों में वेद सम्बन्धी व्याख्यान हुए, जिनमें से एक व्याख्यान दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष डा० मयङ्कर ने लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ में दिया। उसमें उन्होंने कहा कि आर्य लोग भारत में बाहर से आए थे, और यहाँ के मूल निवासी कोल, भील, द्रविड़ आदि थे। इस व्याख्यान के श्रोताओं में से प्रो० रामस्वरूप एम० ए० तथा डा० वेदमित्र एम० ए० ने आकर हमें बताया, कि राजधानी में आर्य समाज की उपस्थिति में इस प्रकार का वेद-विरोधी मिथ्या प्रचार हो रहा है। इस सूचना के अनन्तर गम्भीर विचार-विमर्श के पश्चात् २५.१०.७० को दिल्ली तथा अजमेर, मेरठ, गाजियाबाद और सोनीपत से प्रकाण्ड आर्य विद्वानों को निमन्त्रित किया गया। इस अवसर पर लगभग ७० विद्वान् उपस्थित हुए। सर्वसम्मति से 'आर्य विद्वत्-परिषद्' की स्थापना को गई, जिसका उद्देश्य 'पाश्चात्य तथा अन्य वेद-विरोधी आक्षेपों का निराकरण' निश्चित किया गया। महात्मा आनन्द स्वामी जी नें विद्वत्-परिषद् को आशीर्वाद दिया। उसी दिन आर्यसमाज मन्दिर में प्रथम वेद-गोष्ठी की गई। इस गोष्ठी में वैद्य रामगोपाल जो शास्त्री ने 'वेद में आर्य-दास-युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन' नामक निबन्ध पढ़ा, और इसी विषय की मुद्रित पुस्तक सब विद्वानों में वितरण की गई। इस गोष्ठी के अध्यक्ष आचार्य उदयवीर जी, ग़ाज़ियाबाद थे।

दूसरी गोष्ठी—२०-१२-७० को की गई। इसमें भी १०० के लगभग विद्वान् उपस्थित थे। विचारणीय विषय था, 'क्या वेद में गङ्गादि नदियाँ ऐतिहासिक हैं?' प्रो० रामस्वरूप एम० ए०, विद्यावाचस्पति ने वेदमन्त्रों के आधार पर पूर्व पक्ष प्रस्तुत किया, जिसका उत्तर सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के मुख्य अनुसंधान कर्ता आचार्य वैद्यनाथ जी ने वेदादि प्रमाणों से ही दिया। इसमे पं० चारुदेव जी शास्त्री, आचार्य उदयवीर जी, पं० सत्यपाल शास्त्री, एम० ए० आदि विद्वानों ने भाग लिया। विचार-विमर्श अपूर्ण रहा, और निश्चय हुआ कि इस विषय पर पुनः गोष्ठी की जाए।

तीसरी गोष्ठी—२४.३.७१ को की गई। इसमें भी ८० के लगभग विद्वान् आए, और श्रोताओं से सारा भवन भरा हुआ था। गोष्ठी का विषय था '**भारत में आर्य वैदिक सभ्यता से पूर्व कोई सभ्यता नहीं थी**।' इस विषय पर प्रो० साधुराम एम० ए० नें निबन्ध पढ़कर सिद्ध किया कि भारत में आर्यों से पूर्व कोई अन्य सभ्यता नहीं थी। इनके पश्चात् स्वामी ओमानन्द जी (आचार्य भगवान् देव जी) झज्झर नें कई, मुद्राओं (Seals) के आधार पर प्रमाणित किया कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से पूर्व आर्य सभ्यता ही थी।

चौथी गोष्ठी—२१.११.७१ को की गई, जिसका विषय था, 'क्या वेद में पिता की चल अथवा अचल सम्पत्ति का उत्तराधिकार राष्ट्र को है या सन्तान को?' इस गोष्ठी में लगभग १२६ विद्वान् उपस्थित थे। मुख्य वक्ता पं० जगदेवसिंह जी सिद्धन्ती शास्त्री, सम्पादक 'आर्यमर्यादा' थे। और भी अनेक विद्वानों ने अपने विचार

प्रकट करते हुए कहा कि सम्पत्ति का उत्तराधिकार संतान को है, राष्ट्र को नहीं।

इन गोष्ठियों में आर्य समाज, करोल बाग के अधिकारियों ने गोष्ठियों सम्बन्धी सारा प्रबन्ध सुव्यवस्थित और सुचारू रूप से किया, तथा बहुत धन व्यय करके गोष्ठियों के अनन्तर विद्वानों को जल-पानादि से समादृत किया।

बिशम्भरदास
संयोजक वेद गोष्ठी,
आर्यसमाज, करोल बाग, दिल्ली-५

भूमिका

वेद के आख्यानों का यथार्थ स्वरूप

इस पुस्तक में हमने (१) पुरूरवा: और उर्वशी, (२) त्रित, (३) सरमा-पणि, (४) दधीचि ऋषि (५) अपाला (६) वसिष्ठ की उत्पत्ति (७) अगस्त्य-लोपामुद्रा—इन सात आख्यानों का यथार्थ स्वरूप दिखाया है। सायणाचार्य के ऋग्वेद के भाष्य में शौनक के बृहद्देवता तथा शाट्यायन-ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में जो आख्यान (कहानियाँ) दिये गए हैं, उन्हें पढ़कर वेद के प्रति नितरां अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। हमने ऋग्वेद के मूल-मन्त्रों तथा आर्ष ग्रन्थों के आधार पर इन कहानियों का निराकरण करके यथार्थ भाव दिखाया है। महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने इन कहानियों के घृणित रूप की ओर ध्यान दिलाकर आर्य जनता को वेद के महत्त्व के प्रति जागृत किया और आख्यानों का वास्तविक अभिप्राय जानने का मार्ग दिखाया। उनके ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका के "ग्रन्थ-प्रामाण्याप्रामाण्य विषय" से स्थाली-पुलाक न्याय के रूप में एक आख्यान उद्धृत करते हैं :—

ब्रह्मा का अपनी पुत्री से संभोग

इस कथा के मूल आधार हैं ऋग्वेद (१.६४.३३ और ३.३१.१)। पहले सूक्त के मन्त्र में "पिता दुहितुर् गर्भम् आधात्" पाठ आया है। इस पर निरुक्त का निर्वचन है—'तत्र पिता दुहितुर् गर्भं दधाति, पर्जन्यः पृथिव्याः'। दूसरे मन्त्र में, "पिता यत्र दुहितुः सेकम् ऋञ्जन्त्सं

शग्म्येन मनसा दधन्वे" पाठ है। इस पर ऐतरेय ब्राह्मण (३.३३.३४) में लिखा है—**'प्रजापतिर् वै स्वां दुहितरम् अभ्यध्यायद्, 'दिवम्' इत्यन्य आहुर् 'उषसम्' इत्यन्ये'**, अर्थात् एक मत में दुहिता "द्यौः" है, और दूसरे में "उषा।"

इन प्राचीन निरुक्त और ब्राह्मणों के प्रमाण द्वारा इन मन्त्रों में आलंकारिक वर्णन होते हुए भी, उत्तरकालीन पुराणादि ग्रन्थों के रचयिताओं ने मिथ्या कथा घड़ ली है, कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री से संभोग किया। इस कथा के मिथ्यापन को महर्षि स्वामी दयानन्द ने अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के 'प्रामाण्याप्रामाण्य विषयः' में अधिक स्पष्ट किया है।

(१) "पिता के समान पर्जन्य अर्थात् जलरूप जो मेघ है, उस की पृथिवीरूप दुहिता अर्थात् कन्या है। जब वह उस कन्या में वृष्टि द्वारा जलरूप वीर्य को धारण करता है, तब उससे गर्भ रहकर ओषध्यादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं।"

(२) "यहाँ प्रजापति कहते हैं 'सूर्य' को, जिसकी दो कन्याएँ एक 'प्रकाश' (=द्यौः) और दूसरी 'उषा'। क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसका ही सन्तान कहाता है। इसलिये उषा सूर्य की किरण से उत्पन्न होने के कारण उसकी कन्या कहाती है। उनमें से उषा के सम्मुख जो प्रथम सूर्य की किरण जाके पड़ती है, वही वीर्य स्थापन के समान है। उन दोनों के समागम से पुत्र अर्थात् 'दिवस' उत्पन्न होता है।"

महर्षि दयानन्द ने ब्राह्मण, निरुक्त आदि आर्ष प्रमाणों के आधार पर जो मार्ग दिखाया है, उससे वेद के प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। हमने भी वेद के आख्यानों के स्पष्टीकरण में वेद, ब्राह्मण, निरुक्त, व्याकरण आदि ग्रन्थों का आश्रय लिया है। इस पुस्तक

को पढ़कर पाठक स्वयं अनुभव करेंगे, कि आख्यानों के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिये यही मार्ग सत्य और समीचीन है।

वेद मन्त्रों के अनर्थ

उवट, महीधरादि भाष्यकारों ने वेद मन्त्रों के जो अनर्थ किये हैं, उनका यहाँ निदर्शन किया जाता है—

गणानां त्वा गणपतिँहवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिँहवामहे वसो मम। आहम् अजानि गर्भधम् आ त्वम् अजासि गर्भधम्॥ (यजुर्वेद २३.१६.)

महीधर का अर्थ—'गणपति शब्द से घोड़े का ग्रहण है। "सब ऋत्विजों के सामने यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे, और सोती हुई घोड़े से कहे कि, हे अश्व! जिससे गर्भ धारण होता है, ऐसा जो तेरा वीर्य है, उसको मैं खेंच के अपनी योनि में डालूँ, तथा तू उस वीर्य्य को मुझ में स्थापित करने वाला है।"

स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के "भाष्यकरण-शङ्का-समाधानादि-विषय" में इसी मन्त्र का अति उदात्त अर्थ किया है। उसका अभिप्राय यह है, कि वसु, गणपति, प्रियपति और निधिपति 'परमात्मा' के द्योतक हैं। "गर्भधम्" अर्थात् 'गर्भ धारण करने वाले को'। 'गर्भध' भी ईश्वर का ही नाम है, क्योंकि वह समस्त चराचर जगत् के 'बीज' को धारण करता है। अतः स्वामी दयानन्द जी के अनुसार यह मन्त्र ईश्वर प्रार्थना का है।

पहले समय में महीधरादि ने वेद के जो विकृत भाष्य किये वह तो पुरानी बात हो चुकी, किन्तु वर्तमान काल में भी हनुमान् तथा श्रीकृष्ण आदि विशिष्ट व्यक्तियों का उल्लेख वेद में सिद्ध करने का यत्न किया गया है। यह सर्वथा अप्रामाणिक और अनुचित है। इससे वेद-सम्बन्धी भ्रान्ति उत्पन्न होती है।

हनुमान् सिद्ध करने का प्रयत्न

ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र 'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।' इस मन्त्र के विषय में वेदोपदेश चन्द्रिका (पृष्ठ ८), चौथी कथा में लिखा है—

"यहाँ अग्नि का अर्थ 'वायु-पुत्र' है, कारण सृष्टि-क्रम-बोधक इस श्रुति के अनुसार (आकाशाद् वायुः, वायोर् अग्निः······' अर्थात् 'आत्मा से आकाश बना, आकाश से वायु और वायु से अग्नि ··· '), अग्नि का वायु-पुत्र होना श्रुतिसिद्ध है। उस श्लिष्ट 'वायु-पुत्र' शब्द से यहाँ राम-दूत हनुमान् जी भी लिये जा सकते हैं। वेद कहता है, कि मैं उन वायु-पुत्र हनुमान् जी की स्तुति करता हूँ।"

श्रीकृष्ण अवतार के सिद्ध करने का प्रयास

वेदोपदेश चन्द्रिका पृ० १८३-८४ :—

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवम् उत्पतन्ति।
त आववृत्रन् सदनाद् ऋतस्याद् इत् पृथिवी घृतेन व्युद्यते॥
(ऋग्वेद, १.१६४.४७)

टिप्पणी में संस्कृत व्याख्या में कहा है—"आङ्गिरसो दीर्घतमाः कृष्णं स्तौति—नियानं ··· निर्गच्छन्तं मथुरां प्रति क्रियमाण-प्रस्थानम्" इत्यादि। जिसका सारांश यह है, कि वृन्दवन से मथुरा की ओर जाते हुए श्रीकृष्ण को विदा करके लौटे तो उनकी आँखों से अविरल अश्रुधाराएं वहने लगीं, जिससे सारी व्रज भूमि पंकिल हो उठी।

समीक्षा

यह अर्थ वेदादि शास्त्रों के परम विद्वान् नहीं कर सकते, हमें बड़े दुःख से लिखना पड़ता है, कि यह अर्थ उनके किसी शिष्य का किया हुआ प्रतीत होता है।

(१) वेद के अर्थ करने के लिये यास्काचार्य ने निरुक्त परिशिष्ट (१३.१२) में कहा है '**न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः । प्रसङ्गश एव तु निर्वक्तव्याः ।**' अर्थात् प्रसङ्ग से अलग करके वेदमन्त्रों का निर्वचन नहीं करना चाहिये, प्रसङ्ग के अनुकूल ही अर्थ करना चाहिये ।

(२) वेद में रामायण कालीन हनुमान् का, तथा वृन्दावन से मथुरा प्रस्थान करने वाले श्री कृष्ण का प्रसङ्ग नहीं है। ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में ६ मन्त्र हैं और इसका ऋषि मधुछन्दाः और देवता अग्नि है। यदि इस सूक्त में हनुमान् का वर्णन होता तो इन ऋचाओं में हनुमान् सम्वन्धी समुद्रलङ्घन, सीता जी से भेंट, लङ्का-दाह आदि कौतुकों का भी वर्णन होता ।

(३) आश्चर्य है कि मधुच्छन्दाः ऋषि ने श्री रामचन्द्र अवतार की उपेक्षा करके उनके सेवक कपि हनुमान् की स्तुति से ही वेद का आरम्भ किया !

(४) हनुमान्-चालीसा के '**बाल समय रवि भक्ष कियो तब तीनहुँ लोक भयो अँधियारो**' पद से तो सिद्ध होता है, कि उसने बाल्यावस्था में ही सूर्य को निगल लिया था। सूर्य स्वयं अग्नि का ही पुञ्ज है, तो क्या अग्नि-रूपी हनुमान् ने स्वयं अपने आपको खा लिया था ?

(५) अग्नि शव्द से हनुमान् सिद्ध करने के लिये यदि 'आकाशाद् वायुः, वायोर् अग्निः' इस श्रुति को प्रमाण माना जाए, तो हनुमान् का ब्रह्मचारी होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि इसी श्रुति में आगे आया है, 'अग्नेर् आपः, अद्भयः पृथिवी' अर्थात् अग्नि से जल, और जलों से पृथिवी उत्पन्न हुई। इससे हनुमान् के पुत्र जल (वरुण) और पौत्री पृथिवी हुई। क्या यह रामायणादि ग्रन्थों से हनुमान् का परिवार सिद्ध होता है ?

(६) जव श्री रामचन्द्र जी उत्पन्न ही नहीं हुए थे, और हनुमान् उनका सेवक नहीं था, तब राजा दशरथ तथा उनके पूर्वज और तत्कालीन ऋषि वेद के इस मन्त्र से किसकी उपासना करते थे ? हिन्दी की एक कहावत 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनवा जोड़ा' के अनुसार वेदमन्त्रों का अनर्थ नहीं करना चाहिये।

श्रीकृष्ण के वृन्दावन से मथुरा को प्रस्थान के सम्वन्ध में वेद की ऋचा (१.१६४.४७) का देवता 'सूर्य' है। अतः इसका अर्थ सूर्य सम्वन्धी होना चाहिये, कृष्ण सम्वन्धी नहीं। इस प्रकार के अर्थ करने में आर्ष-पद्धति की सर्वथा अवहेलना की गई है।

(१) वेद में ऋचा ४६ का देवता भी 'सूर्य' है। इसमें कहीं भी वृन्दावन, मथुरा आदि की गन्ध नहीं है। स्वार्थ सिद्धि के लिये ऐसे प्रकरण विरुद्ध ऊट-पटाँङ्ग अर्थ करना वेदानुयायियों को पथ-भ्रष्ट करना है। मन्त्र में आए 'नियानम्' पद का अर्थ 'वृन्दावनतो मथुरां प्रति क्रियमाण-प्रस्थानम्' करना सर्वथा अनुचित है। इसके अतिरिक्त 'कृष्ण' पद से जो कि 'नियानम्' का विशेषण है, वलात् व्यक्तिवाचक श्रीकृष्ण का अर्थ लेना भी किसी प्रकार युक्ति-संगत नहीं। यास्क मुनि ने निरुक्त (७.२४) में 'कृष्णं नियानम्' की व्याख्या की है—**'नियानं निरयनं रात्रिर् आदित्यस्य,'** आदित्य की उत्तरायण से दक्षिण की ओर गति, जिसे 'आदित्य की रात्रि' अर्थात् दक्षिणायन कहा है। यहाँ कृष्ण का अर्थ अन्धकार है। लेखक महोदय के महामान्य भाष्यकार सायणाचार्य ने भी **'कृष्णं नियानम्'** का अर्थ 'प्रस्थान करता हुआ कृष्ण' नहीं किया। उन्होंने इसके दो अर्थ किये हैं **'कृष्णं वर्णं नियमेन गच्छन्तं मेघम्'** तथा **'कृष्णं नियमनं रात्रिः, देवानां हि रात्रिर् दक्षिणायनम्'** किये हैं।

(२) 'हरयः सुपर्णाः' का अर्थ लेखक ने किया है, 'भगवत्-सेवया पाप हारिणः शोभन-गमना व्रजवासिनः' जो कि सवथा असंगत और वेद-विरुद्ध है।

वेदमन्त्रों में हनुमान् और श्रीकृष्णादि अवतारों को सिद्ध करने के लिये मन्त्रार्थों में जो खेंच-तान की है, वह परम पूज्य श्री स्वामी गङ्गेश्वरानन्द जी महाराज की प्रतीत नहीं होती, क्योंकि मैं उनसे व्यक्तिगत परिचित हूं। इस प्रकार उच्चकोटि के विद्वान् अर्थों का अनर्थ नहीं कर सकते। मेरा मन साक्षी देता है, कि यह खेंच-तान सम्पादक स्वामी गोविन्दानन्द वेदान्ताचार्य ने की होगी।

वेदोपदेश-चन्द्रिका के आमुख लेखक श्री गोविन्द नरहरि बैजापुरकर ने पृष्ठ ५ पर लिखा है—जैसा कि महर्षि यास्क का वचन है—"**मन्त्र-ब्राह्मणयोर् वेद-नामधेयम्**"। इसी वाक्य से प्रतीत होता है, कि लेखक महोदय को वैदिक वाङ्मय का ज्ञान नहीं, क्योंकि यह वचन यास्क मुनि के निरुक्त में कहीं भी नहीं है।

पाश्चत्य विद्वानों द्वारा किये गए अनर्थ

ऋग्वेद (१०.२७.२ और १०.२८.३) में मैक्डॉनल और ग्रिफिथ ने 'वृषभ' पद का अर्थ 'bull' अर्थात् 'बैल' किया है, और सिद्ध किया है, कि इन्द्र बैलों को खाता था, जबकि ऋग्वेद (९.१०८.११) में स्पष्ट रूप से 'वृषभ' का अर्थ प्रकरणानुसार 'सोम' लता आता है (**एतम् उ त्यं मद-च्युतं सहस्र-धारं वृषभं दिवो दुहुः। विश्वा वसूनि बिभ्रतम्॥**)

ईसामसीह के नाम को मन्त्रों में दिखाने का प्रयत्न

एक ईसाई महोदय ने इसी प्रकार यजुर्वेद (४०.१) मन्त्र '**ईशा वास्यम् इदं सर्वम्**' से सिद्ध किया है, कि यह सारा जगत् 'ईसा' से ही व्याप्त है, अतः सब लोगों को ईसाई धर्म ग्रहण करना चाहिये।

मुसलमानों द्वारा वैदिक सन्ध्या में "मदीना" दिखाने का प्रयत्न

यजुर्वेद (३६.२४) मन्त्र 'तच् चक्षुर् देवहितं........' में **प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्'** पाठ आता है। सन्धि से अनभिज्ञ मूढ़ लोगों ने 'अदीनाः' को पूर्व पद के हलन्त 'म्' के साथ 'मदीना' समझ लिया। धर्मान्धता में मनुष्य विचार हीन हो जाता है।

उपसंहार

इन आख्यानों के यथार्थ रूप लिखने का एक ही उद्देश्य है, कि वेद के आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ जानकर, मिथ्या और भ्रामक मानवीय कथाओं से वेद को बचाकर उसकी रक्षा की जाए। वेद में आख्यानों द्वारा प्राकृत घटनाओं को वर्णन करने का कारण निरुक्त (१०.१०) में कहा है, **'ऋषेर् दृष्टार्थस्य प्रीतिर् भवत्य् आख्यान-संयुक्ता,'** अर्थात् ऋषि को अपने दृष्ट मन्त्रार्थ को आख्यान द्वारा वर्णन करना रुचिकर लगता है।

आर्यसमाज मार्ग, करोल बाग, दिल्ली-५ निवेदक
१७ वैशाख, २०२६ **वैद्य रामगोपाल शास्त्री**

पुरूरवाः और उर्वशी का आख्यान

ऋग्वेद १०।६५

ऋग्वेद (१०।६५) में ऐल-पुत्र पुरूरवा तथा उर्वशी का संवाद आता है। इस संवाद के आधार पर ही वेद के परवर्ती साहित्य में उर्वशी को अप्सरा और पुरूरवा को चन्द्रवंशी पुरुष कहा है, और एक कथा घड़ दी गई, कि उर्वशी ने पुरूरवा की कामना की और उससे सम्भोग किया। उर्वशी जब लुप्त हो गई, तब पुरूरवा विह्वल होकर उसके पीछे गया, और उससे लौटने की प्रार्थना की, किन्तु उर्वशी ने कहा कि मैं नहीं आऊँगी।

कवि कालिदास ने इस कथा के आधार पर 'विक्रमोर्वशी' नाटक की रचना की है। इस प्रकार सर्वसाधारण जनता में भ्रम फैला हुआ है कि ऋग्वेद में वर्णित यह इतिहास मानवीय इतिहास है। इस भ्रम को निवारण करने के लिये वैदिक प्रमाणों से ही हमने सिद्ध किया है, कि ऋग्वेदोक्त यह कथा मानवीय कथा नहीं, अपितु प्राकृत घटना का आलंकारिक वर्णन है। ऋग्वेद के इस संवाद में पुरूरवा को यास्काचार्यकृत निरुक्त (१०।४६) में मध्यस्थानीय देवता माना गया है, और पुरुरवा पद का निर्वचन किया है—"**पुरूरवा बहुधा रोरूयते**" अर्थात् बहुत शब्द करता है, इससे पुरूरवा कहलाता है। व्याकरण में भी 'पुरु' शब्द का अर्थ 'बहुत' और 'रु' धातु का अर्थ 'शब्द' करना है।

वेद में पुरूरवा का विशेषण 'ऐल' है (ऋ० १०।६५।१८), अर्थात् 'इला का पुत्र।' 'इला' पद कौषीतकि ब्राह्मण (६।२) में पृथ्वी का वाचक है। इससे प्रतीत होता है कि पुरूरवा 'मेघ' का ही

नाम है, क्योंकि पृथ्वी से उठी हुई वाष्प ही मेघ को उत्पन्न करती है, और मेघ ही बहुत गर्जना करता है।

उर्वशी की व्युत्पत्ति 'उरु' अर्थात् दूर तक 'अश् व्याप्तौ' से व्याप्त होने के कारण 'विद्युत्' ही है। देखो निरुक्त ५।१४—"उरु अभ्यश्नुते' बहुत व्याप्त होती है, और मध्यस्थानीया देवता है। निरुक्त में इसे 'अप्सरा अप्सु सरति' अर्थात् अन्तरिक्षस्थ जलों में सर्पण (विचरण) करती है।

पुरूरवा और उर्वशी जब दोनों ही मध्यस्थानीथ देवता हैं तब, मानवीय इतिहास में इनको लगाना सर्वथा असंगत है। ऋग्वेद (१०।६५।७) में कहा है कि जब वह पुरूरवा (मेघ) उत्पन्न हुआ, तब 'ग्ना:' अर्थात् 'आप:' (जल) उसके पास थे। (निरुक्त १०।४६) में ग्ना: का अर्थ **'गमनाद् आप:'** किया है। और इसी मन्त्र में पुरूरवा को पुष्ट करने वाली 'स्वयं बहने वाली नदियाँ' (**अवर्धन् नद्य: स्व-गूर्ता:**) कहा है। यह पाठ भी सिद्ध करता है कि पुरूरवा मेघ ही है। इसी सूक्त के मन्त्र १०।१७ में उर्वशी का विशेषण है **'भरन्ती मे अप्या काम्यानि'** तथा **'अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीम्'** अर्थात् अन्तरिक्ष में व्याप्त होने वाली तथा रजस् (जल) की निर्मात्री है। इससे भी स्पष्ट है कि यह इतिहास प्राकृतिक है, मानवीय नहीं।

इस अलंकार से केवल इतना भाव ही व्यक्त किया गया है कि मेघों के संघर्ष के समय उर्वशी (विद्युत्) प्रकट होती है, और वही विद्युत् क्षण भर में लुप्त हो जाती है, यही उर्वशी का छिपना है। शतपथ ब्रा० (३।४।१।२२) में पुरूरवा और उर्वशी से 'आयु' उप्पन्न हुआ—**'उर्वशी वा ऽप्सरा: पुरूरवा: पति:, अथ यत् तस्मान् मिथुनाद् अजायत तद् आयु:।'** इसी ब्राह्मण (६।२।३।१६) में 'आयु' को 'अन्न' कहा है (अन्नम् उ वा आयु:), निघण्टु २।७ में

भी आयु को 'अन्न' नामों में पढ़ा गया है। इससे सिद्ध है कि पुरुरवा और उर्वशी 'मेघ और विद्युत्' हैं, और उनके मेल से वृष्टि, और वृष्टि से अन्न पैदा होता है।

स्कन्द स्वामी ने निरुक्त ५।१३ की टीका (भाग २ पृष्ठ ३४३) में उर्वशी और पुरूरवा के आख्यान का स्वरूप इस प्रकार दर्शाया है—

अत्र च नित्यपक्षे केचित् उर्वशी विद्युत्, वायुः पुरूरवा मन्यन्ते। सा च उरु अन्तरिक्षमश्नुते प्रभया।

अर्थात्—नित्य पक्ष में कई आचार्य उर्वशी का अर्थ विद्युत् और पुरूरवा का वायु मानते हैं। वह उर्वशी विद्युत् विस्तृत अन्तरिक्ष को प्रभा से व्याप्त करती है।

स्कन्दस्वामी से पूर्ववर्ती नैरुक्त आचार्य वररुचि ने अपने 'निरुक्त-समुच्चय' ग्रन्थ में इसी १०।६५ सूक्त के १४ वें मन्त्र का व्याख्यान करते हुए लिखा है—

पुरूरवा मध्यमस्थानो वाय्वादीनामेकतमः पुरु रौतीति पुरूरवाः, उर्वशी विद्युत्, उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षमश्नुते दीव्यत इति उर्वशी। (पृष्ठ ८५)।

अर्थात्—पुरूरवा मध्यमस्थानी देवता वायु आदि में से एकतम है, और उर्वशी विद्युत् है, वह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त होती है।

इस संवाद से निम्नलिखित शिक्षाएं प्राप्त होती हैं—

१. इस सूक्त के मन्त्र ३ से यह शिक्षा मिलती है कि 'कामिनी-आसक्त' व्यक्ति में वीरता की भावना नष्ट हो जाती है, और उसमें बल और वेग नहीं रहता। उनके अनुगामी भी बलहीन हो जाते हैं।

२. मन्त्र ४ में कहा है—उर्वशी अर्थात् विद्युत् के सम्बन्ध से ही मेघ से वर्षा होती है, जिनसे मनुष्यों को अन्न और धन प्राप्त होते हैं।

निरुक्त (२।१६) में कहा है, '**अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभाव-कर्मणो वर्षकर्म जायते।**' अर्थात् मेघों और विद्युत् के मेल से ही वृष्टि होती है।

३. मन्त्र १५ में कहा है '**न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकानां हृदयानि एताः।**' अर्थात् वेश्याएं किसी की मित्र नहीं होतीं, क्योंकि उनकी मित्रता भेड़ियों के हृदयों के समान क्रूर और धोखा देने वाली होती हैं। यह वाक्य स्वयं उर्वशी ने स्त्री होते हुए कहा है।

यह प्राकृत संवाद इस प्रकार की अच्छी शिक्षाएं देने के लिए अलंकार द्वारा वर्णित किया गया है। इस इतिहास को ग्रिफ़िथ भी आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी प्राकृत घटना माना है। उनके मत में पुरूरवस् सूर्य है और उर्वशी उषा है।

Grlffith's Translation of Rigveda P. 531 foot-note—"Max Muller considers the story to be 'one of the myths of the Vedas which expresses the correlation of the dawn and the sun.' According to Dr. Goldstucker, Urvashi is the morning mist which vanishes away as soon as Pururavas, the Sun displays itself."

ऋग्वेद १०।९५ सूक्त

ऋषि—१, ३, ६, ८-१०, १२, १४, १७ पुरूरवाः। २, ४, ५, ७, ११, १३, १५, १६. १८ उर्वशी। **देवता**—१, ३, ६, ८-१०, १२, १४, १७, उर्वशी; २, ४, ५, ७, ११, १३, १५, १६, १८ पुरूरवाः।

संकेत=पु०—पुरूरवाः, उ०=उर्वशी

पु०—हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन् ॥१॥

हे निष्ठुर पत्नि ! मन से अनुरक्त हो, जिससे हम दोनों वार्तालाप करें। पिछले दिनों में जो हमारे मन के भाव अविवक्षित रहे, वे हमें सुखकारी नहीं हुए ॥१॥

उ०—किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥२॥

तेरी इस बात से मैं क्या करूं। उषाओं में प्रथम उषा के समान चली जा रही हूं। हे पुरूरवा ! तुम लौटकर घर चले जाओ, मैं वायु के समान दुष्प्राप्य हूं ॥२॥

पु०—इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥३॥

जयश्री के लिये मैं तूणीर से बाण फेंकने योग्य नहीं रहा, और (रंहिः) वेगवान् होता हुआ भी गौओं और शत्रुओं के सैंकड़ों धन को नहीं जीत सकता। वीर-रहित राजकर्म में मेरी सामर्थ्य चमकती नहीं। युद्ध में (उरा) मेरे सिंह नाद करने वाले वीर अब गर्जन करने की चिन्ता नहीं करते ॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन् दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥४॥

वह उर्वशी धन और अन्न श्वशुर के लिए धारण करती है। यदि वह (उषः) चाहती है, तो श्वशुर के कोष्ठ से पति-कोष्ठ को जाती है, और वहां दिन-रात संभोग करती है ॥४॥

उ०—त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्वस्तदासीः ॥५॥

हे पुरूरवा ! तू दिन में तीन बार मेरे साथ रमण करता रहा।

मेरी बारी का उल्लंघन न करने के लिए तू मेरी कामना को पूर्ण करता रहा। मैं, हे पुरूरवा ! तेरी इच्छा को मानती रही। हे वीर ! तब तू मेरे शरीर का स्वामी था॥५॥

पु०—या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर् ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त॥६॥

जो यह सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्न-आपि, ह्रदे-चक्षु, ग्रन्थिनो और चरण्यु, वे अरुण (रक्त) वर्ण प्रकाशमान अप्सराएँ दुधारू गौओं के समान शब्द करती हुई मेरे आश्रय अर्थात् आवास में नहीं आतीं॥६॥

उ० समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन् नद्यः स्वगूर्ताः।
महे यत् त्वा पुरूरवो रणायाऽवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः॥७॥

जब वह पुरूरवा उत्पन्न हुआ, आपः (जल) उसके पास बैठी थीं, और स्वयं बहने वाली नदियों ने उसे पुष्ट किया। हे पुरूरवा ! तुझे दस्युओं के नाशार्थ महान् युद्ध करने के लिए देवों ने बढ़ाया, अर्थात् प्रबल बनाया॥७॥

पु०—सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे।
अप स्म मत् तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वाः॥८॥

जब मैं पुरुष (पुरूरवा) वस्त्रों को उतारती हुई इन अमानुषी अप्सराओं का निकट से सेवन करने लगा, तब वे मेरे से डर कर व्याध से त्रस्त हरिणी और रथ के स्पर्श से डरे हुए घोड़ों के समान भाग गईं॥८॥

उ०—यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक् सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः॥९॥

जब यह मर्त्य पुरूरवा उन अमर अप्सराओं को बातों और क्रियाओं से प्रेमपूर्वक छूने लगा, तब जलचर पक्षियों के समान

उन्होंने अपने शरीरों को छुपा लिया, और कूदते और जबड़ों को पीसते हुए घोड़ों के समान दौड़ गईं ॥९॥

पु०—विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०॥

जो उर्वशी मेरे लिए अन्तरिक्षस्थ जलों के कमनीय पदार्थ धारण करती हुई गिरती हुई विद्युत् के समान चमकी, और जल से सुन्दर वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। वह उर्वशी उसकी आयु दीर्घ करे ॥१०॥

उ०—जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत् पुरूरवो म ओजः।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन् न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११॥

इस प्रकार तू पृथिवी की रक्षा के लिए उत्पन्न हुआ है, और यह ओज (गर्भ) मेरे अन्दर पुरूरवा ने डाला था। हे पुरूरवा ! जानती हुई मैंने उस दिन तुझे चेतावनी दी थी, तूने मुझे नहीं सुना। अब प्रतिज्ञा भंग करता हुआ तू क्या कहता है ? ॥११॥

पु०—कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन्।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

कब उत्पन्न हुआ पुत्र पिता की कामना करेगा, और (पिता) को पहचान कर क्या चिल्लाता हुआ आंसू न बहाएगा ? परस्पर समान मन वाले (परस्पर प्रेम करने वाले) पति-पत्नी का कौन विच्छेद कर सकता है, जबकि तेरे सुसराल में गार्हपत्य अग्नि प्रदीप्त रहती है ॥१२॥

उ०—प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन् न क्रन्ददाध्ये शिवायै।
प्र तत् ते हिनवा यत् ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३॥

मैं कहती हूं (वह) चिल्लाता हुआ आंसू बहाएगा, (किन्तु) कल्याण के लिये अभीष्ट उपस्थित होने पर (अर्थात् पिता के उपस्थित होने पर) वह नहीं रोएगा। मेरे पास जो तेरा है वह तुझे देती हूं, तू अपने घर जा। हे मूढ़, तू मुझे नहीं पा सकेगा ॥१३॥

पु०—सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावतं परमां गन्तवा उ।
अधा शयीत् निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४॥

तेरे साथ क्रीड़ा करने वाला पति आज बहुत दूर जाने के लिए दौड़ जाए, और लौटे नहीं। और वह दुर्गति की गोद में सो जाए, और उसे वेगवान् भेड़िये खा जाएँ ॥१४॥

उ०—पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५॥

हे पुरूरवा ! तू मृत्यु को प्राप्त न हो और न भाग। न तुझे अकल्याणकारी भेड़िये ही खायें। स्त्रियों की मित्रतायें स्थिर नहीं होतीं, क्योंकि ये भेड़ियों (या लगड़भग्गों) के हृदयों वाली होती हैं। अर्थात् इनकी मित्रता भेड़ियों के हृदय के समान होती है ॥१५॥

उ०—यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रिः शरदश्चतस्रः।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥

जब मैं रूप परिवर्तन करके मनुष्यों में चार वर्ष रात्रि में वास किया। दिन में एक बार थोड़ा-सा जल पीती रही, और उसी थोड़े जल से ही तृप्त हुई घूम रही हूं ॥१६॥

पु०—अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७॥

मैं वसिष्ठ (श्रेष्ठतम प्रेमी) अन्तरिक्ष में व्याप्त होने वाली और जल की निर्मात्री उर्वशी को अपने वश में लाना चाहता हूं। सुकृत (पुण्य) का दाता तेरे पास रहे। तू लौट कर आ, मेरा हृदय तप रहा है ॥१७॥

उ०—इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद् भवसि मृत्युबन्धुः।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥१८॥

हे इला-पुत्र पुरूरवा ! ये देव तुझे यह कह रहे हैं कि तू मृत्यु के वश में हो जाएगा। तेरी सन्तान देवों का हवि से यजन करेगी, और तू भी स्वर्ग में मेरे साथ आमोद-प्रमोद करेगा ॥१८॥

त्रित का आख्यान

ऋग्वेद मं० १, सूक्त १०५। ऋषिः —त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा।

ऋग्वेद में त्रित का आख्यान मानवीय इतिहास नहीं, अपितु त्रित द्वारा आध्यात्मिक भाव का वर्णन है। जिसे हम आगे जाकर लिखेंगे।

नीचे हम त्रित के भिन्न-भिन्न आख्यानों का वर्णन करते हैं, जो भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में मिलते हैं। यदि यह मानवीय इतिहास होता, तो आख्यानों में भेद नहीं होना चाहिए था।

शौनक के बृहद्देवता (३. १३२-३६) में वर्णन इस प्रकार है—

'गौओं के पीछे चल रहे त्रित को कुएं में फेंक कर सालावृकों के क्रूर पुत्र सारी गौओं को वहां से अपहृत करके ले गए।'

सायणाचार्य ने अपने भाष्य में शाट्यायन ब्राह्मण के आधार पर इतिहास इस प्रकार लिखा है—

'पुरा काल में एकत, द्वित और त्रित इन तीन ऋषियों ने कभी मरुभूमि में एक कूप को प्राप्त किया। उनमें से त्रित जल पीने के लिए कूप में उतरा। स्वयं पीकर, अन्य दोनों के लिये पानी लाकर उसने उन्हें दिया। उन दोनों ने जल पीकर त्रित को कूप में धकेल दिया। और कूप को रथ-चक्र से ढांपकर, त्रित का धन लेकर भाग गए।'

इसी सूक्त पर स्कन्द स्वामी ने अपने ऋग्वेद भाष्य में निम्नलिखित इतिहास दिया है—

'आप्त्य ऋषि के एक, द्वित और त्रित नामक तीन पुत्र थे। उन्होंने यज्ञ की इच्छा से गौएं मांगीं। उन गौओं को लेकर जब

वह सरस्वती के किनारे जा रहे थे, तो उनको नदी के परले तट पर बैठे हुए भेड़िये ने देखा, और देखकर वह नदी में तैरता हुआ उनके सामने आया, और उन्हें डराया। वे तीनों भागे और त्रित एक घास तृण आदि से ढके हुए अन्धकूप में गिर पड़ा। एकत और द्वित गौएं लेकर घर को चले गए। कूप में गिरे त्रित ने सोचा कि सोमयाग किये विना मरना अच्छा नहीं। तो किस उपाय से सोम-पान करूं।'

ये तीनों भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के वर्णन, जो एक दूसरे के विपरीत हैं, इस बात का प्रमाण हैं, कि त्रित की कथा ऐतिहासिक नहीं। शाट्यायन ब्राह्मण में एकत, द्वित और त्रित तीनों ऋषि कहे गए हैं। कितने दुःख की बात है कि त्रित ने एक तो अन्य दोनों ऋषियों को पानी पिलाया, उसके बदले में उन्होंने उसे कूप में धकेलकर उसके धन का अपहरण किया। यह तो ऋषियों पर लाञ्छन लगाने के लिये किसीने कथा घड़ दी है।

आख्यान का वास्तविक रहस्य

निरुक्त (४.६) में 'त्रित' का निर्वचन 'तीर्णतमो मेधया' अर्थात् 'बुद्धि में सबसे अधिक बढ़ा हुआ' किया है। इसका तात्पर्य यह है, कि मोह-माया के घोर अन्धतम कूप में फंसे हुए एक महान् विद्वान् ने जीवन के रहस्य को समझकर मोह-माया के कूप से निकलने के लिये भगवान् से इस सूक्त द्वारा प्रार्थना की।

आरम्भ में उसने चन्द्र, अग्नि, वरुण, अर्यमन्, इन्द्र, सविता आदि दिव्य शक्तियों से प्रार्थना की कि तुम संसार का इतना उप-कार करती हो, मेरा भी कल्याण करो, और मुझे भी इस मोहमाया के अन्ध कूप से निकालो। अन्त में उसने इन सब शक्तियों के स्वामी बृहस्पति से निम्नलिखित प्रार्थना की—

त्रित: कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये।
तच्छुश्राव वृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७॥

इस मन्त्र का भाव यह है कि सच्चे हृदय से प्रार्थना करने वाले भक्त की प्रार्थना को बृहस्पति ने सुना और उसको मोहमाया के अन्धकूप रूपी कष्ट से निकालकर और सच्चा ज्ञान देकर उसका कल्याण किया।

आचार्य यास्क ने निरुक्त (५.२०) में इस आख्यान को ज्योतिर्मण्डल पक्ष में लगाया है, मानवीय इतिहास पक्ष में नहीं। उनकी व्याख्या निम्नलिखित है—

'वृकश् चन्द्रमा भवति विवृत-ज्योतिष्को वा विकृत-ज्योतिष्को वा विक्रान्त ज्योतिष्को वा।

अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि।
उज्जिहीते निचाय्या नष्टेव पृष्टचामयी
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८॥

अरुण आरोचनो मासकृन् मासानां चार्धमासानां च कर्त्ता भवति। चन्द्रमा वृकः पथा यन्तं ददर्श नक्षत्रगणम्। अभिजिहीते निचाय्य येन-येन योक्ष्यमाणो भवति। चन्द्रमास् तक्ष्णुवन् इव पृष्ठ-रोगी। जानीतं मेऽस्य द्यावापृथिव्याव् इति।

इस पर स्व० पं० भगवद्दत्त जी का अनुवाद—

अरुण अर्थात् प्रकाशक मासों का बनाने वाला चन्द्रमा पथ पर चलते हुए [नक्षत्र गण] को [उनसे नीचा होने से] देखता है। ऊर्ध्व जाता है, [प्रत्येक नक्षत्र के योग से] [उनको] देखकर तरखान के समान, जो पीठ से रोगी है, [अर्थात् झुककर काम करने से थकी हुई पीठ वाला होता है, और विश्राम के लिये उठता है,

वैसे चन्द्रमा उठता है]। जानो मेरे इस [स्तोम] को, हे द्यावापृथिवी !

अरुण=दीप्तिवाला=प्रकाशक, मासों का और अर्धमासों का कर्त्ता होता है। चन्द्रमा [जो] वृक [है] अपने पथ पर जाते हुए नक्षत्रगण को देखता है। ऊपर उठता है [उन-उन नक्षत्रों को] देखकर, जिस-जिस [नक्षत्र के साथ] जुड़ा हुआ होता है। चन्द्रमा, तरखान का काम=छीलना करता हुआ जैसे पृष्ठ रोगी। जानो मेरे इस [स्तोम] को हे द्यावापृथिवी !

त्रित के आख्यान को निरुक्त (४-६) पर स्कन्द स्वामी ने अपनी टीका में नित्य पक्ष में लिया है। वे लिखते हैं—

त्रितः शुक्लादि लक्षणैः कर्म-पाशैः पुण्यापुण्योभयविधैर्बद्धो मातुर् उदरे नरके मग्नोऽशुचि-प्रस्तरके पुरीष-तन्तु-जाले यथोल्लो-मावष्टम्भादेर् विभक्तोच्छ्वासो (तं) बीभत्समानम् असृक् पङ्क-मध्य-शायिनं तमसि निरालोके वर्तमानम् अभितो मातुः पर्शव इव व्यवन्ति।

स्कन्द स्वामी ने इस टीका में त्रित को क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव माना है, जो कि पुण्य और पाप कर्मपाशों से बन्धा हुआ माता के गर्भ-रूपी नरक-समान कूप में पड़ा हुआ उस बीभत्स अवस्था से निकलने के लिये बृहस्पति परमात्मा से प्रार्थना करता है।

हमने आरम्भ में जो त्रित को अध्यात्मपक्ष में लगाया है, वही समुचित है। मानवीय इतिहास यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता।

त्रित का आख्यान

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१॥

जलमय आकाश में सुन्दर रश्मियों वाला चन्द्रमा दौड़ता है। हे सुनहरी चक्रवाली चमकीली रश्मियो ! कूप में पतित होने के कारण मेरी इन्द्रियाँ तुम्हारे स्थान को नहीं पा सकतीं। हे द्यावा-पृथिवी मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१॥

अर्थम् इद् वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम्।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे।
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२॥

अर्थी लोग अपने अर्थ (लक्ष्य) को और पत्नी अपने पति को प्राप्त होती है। (द्यावापृथिवी) पुष्टिकारक वर्षा के जल को देती हैं। और (सूर्य) इसे ग्रहण करके (पुनः) प्रदान करता है। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥२॥

मो षु देवा अदः स्वर् अव पादि दिवस्परि।
मा सोम्यस्य शम्भुवः शूने भूम कदा चन
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥३॥

हे देवो ! वह दिव्य ज्योति कभी नष्ट न हो। कल्याणकारी चन्द्रमा की (ज्योति से) हम कभी वञ्चित न हों। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥३॥

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥४॥

सन्निकृष्ट (होने वाले) यज्ञ को मैं पूछता हूं। वह यज्ञ जो (दिव्य शक्तियों) का दूत है, इस बात को बताए कि वह प्राचीन नियम कहाँ गया, और कौन नया व्यक्ति उसे धारण करता है ? हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥४॥

अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः।
कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५॥

हे देवो ! जो तुम द्युलोक के प्रकाश में तीन लोकों में स्थित हो ! कहाँ है तुम्हारा सत्य, कहाँ है तुम्हारा यह झूठ, कहाँ है मेरी तुम्हारे लिये की हुई (यज्ञ की) आहुति ? हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥५॥

कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम्।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६॥

कहाँ है तुम्हारे सत्य का बल, कहाँ है वरुण की अनुग्रह दृष्टि ? कैसे हम महान् अर्यमा के पथ द्वारा दुर्बुद्धियों को पराभूत करें ? हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥६॥

अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित्।
तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७॥

(हे देवो !) मैं वही हूं जो पहले सोम सवन के समय कई स्तुतियाँ गाता था। उससे मुझे मानसिक चिन्ताएँ ऐसे खा रही हैं, जैसे प्यासे मृग को (नदी की ओर जाते हुए) भेड़िया (खा जाता है)। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥७॥

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
मूषो न शिश्नाव्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥

(मोहमाया के) अन्धकूप की भित्तियाँ मुझे तपा रही हैं, जैसे सपत्नियाँ (पति को) चारों ओर से (तंग करती हैं)। हे इन्द्र !

मानसिक चिन्तायें मुझ स्तोता को ऐसे खा रही हैं, जैसे चूहा अपनी पूंछ को (तेल में भिगो कर खाता है, काटता है)। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥८॥

अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

वे जो (सूर्य) की सात रश्मियाँ हैं, वहाँ मेरे प्राण अटके हुए हैं। आप्त्य (विवश) त्रित यह बात जानता है, वह सम्बन्ध (स्थापित करने) के लिये स्तुति करता है। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥९॥

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१०॥

वे जो पांच सिञ्चन करनें वाले (इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमन्, सविता—ऋग्वेद १, १०७, ३) महान् द्युलोक के मध्य में स्थित हैं, वे सब साथ जाकर देवताओं को (मेरे विषय में) कहें, और लौट आएँ। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१०॥

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११॥

द्युलोक के उच्चतम स्थान के मध्य ये सुन्दर रश्मियां स्थित हैं। वे तीव्र धारा से चलते हुए जल को तैरते वृक (चन्द्रमा) को मार्ग से निवारण करती हैं ॥११॥

नव्यं तदुक्थ्य हितं देवासः सुप्रवाचनम्।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२॥

हे देवो ! अति प्रशंसनीय नवीन स्तोत्र (आपके लिये) स्थापित किया है। नदियां नियम-पूर्वक चल रही हैं, सूर्य (भी) नियम-पूर्वक (प्रकाश को) फैलाता है। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१२॥

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम्।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१३॥

हे अग्नि ! वह जो तेरा प्रशस्य बन्धुत्व देवों में है, और तू जो बहुत विद्वान् है, वह तू मनु के समान हमारे लिये देवताओं की पूजा कर ! हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१३॥

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४॥

अति विद्वान् और मेधावी अग्नि होता बना हुआ मनु के समान (यज्ञ में) बैठा हुआ देवों के प्रति (हमारे) हव्यों को चारु रूप से प्रेरित करे। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१४॥

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१५॥

वरुण महान् कर्म करता है, उस मार्ग-निर्देशक (वरुण) से हम याचना करते हैं। वह हृदय में ज्ञान को प्रकाशित करता है। प्रशंसनीय=स्तुत्य (वरुण हमारे लिये) सत्य हो। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१५॥

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः।
न स देवा आतक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१६॥

वह जो द्युलोक में अति प्रशंसनीय आदित्यरूपी मार्ग बनाया है, हे देवो ! वह अतिक्रम नहीं किया जा सकता। उसे हे मर्त्यो ! तुम नहीं देख सकते। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१६॥

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७॥

त्रित कुएँ में गिरा हुआ देवों को रक्षा के लिये पुकारता है। बृहस्पति ने आपत्ति से निकलने का अवसर देते हुए उसकी प्रार्थना को सुना (अर्थात् प्रार्थना सुनकर उसे बाहर निकाल दिया)। हे द्यावा-पृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१७॥

अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्टयामयी
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८॥

मार्ग से जाते हुए मुझे मासों के बनाने वाले दीप्तिमान् चन्द्रमा ने देखा। (और) देखकर उस तरखान (बढ़ई) के समान जिसकी पीठ दुःख रही है, वह उठ खड़ा हुआ। हे द्यावापृथिवी ! मेरे इस (कष्ट) को जानो ॥१८॥

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥

हम इन्द्र के साथ इस स्तुति-घोष से सब वीरों के साथ युद्ध में (शत्रुओं को) पराभूत करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१९॥

टिप्पणी

वृक—इस सूक्त की १८वीं ऋचा में 'वृक' पद आया है। इसी शब्द के आधार पर आख्यान में कह दिया कि त्रित तथा उसके दोनों भाइयों को सरस्वती नदी के परले तट पर बैठे भेड़िये (वृक)

नें देखा। देखकर वह तैरता हुआ उनकी ओर आया। दो भाई तो भाग गये, किन्तु त्रित डरकर कूप में गिर गया। यह सर्वथा मन-घड़न्त कथा है। वास्तव में 'वृक' का अर्थ यहाँ 'चन्द्रमा' है। इसमें निम्नलिखित निरुक्त (५,४,२०) का प्रमाण है—

'वृकश् चन्द्रमा भवति, विवृत-ज्योतिष्को वा विकृत-ज्योतिष्को वा विक्रान्त-ज्योतिष्को वा॥'

'वृक' चन्द्रमा होता है। खुली हुई ज्योति वाला, अथवा विकृत (अर्थात् उष्ण से विकृत='शीत') ज्योति वाला, अथवा विक्रान्त (तारागण से) प्रबल ज्योति वाला होता है।

आत्रेयी अपाला का आख्यान

ऋग्वेद ८.९१ में अत्रि की कन्या 'अपाला' का आख्यान वर्णित है। पहले हम यह दिखाएँगे कि इस आख्यान को किस प्रकार मानवीय घटना मानकर विकृत किया गया है, जिससे वेद पर अश्रद्धा उत्पन्न होती है, तत्पश्चात् सूक्त का अर्थ देकर अन्त में आख्यान के यथार्थ रूप की व्याख्या करेंगे।

शाटचायन ब्राह्मण में वर्णित आख्यान

त्वचा के रोग से पीड़ित अत्रि-सुता अपाला पति से परित्यक्त होकर, अपना रोग दूर करने के लिये अपने पिता के आश्रम में जाकर इन्द्र के निमित्त तप करने लगी। उसे ज्ञात था कि इन्द्र को सोम प्रिय है। एक दिन नदी-स्नान से लौटते हुए उसे मार्ग में सोम मिल गया, जिसे लेकर वह अपने दान्तों से चबाने लगी। चर्वण ध्वनि को सुनकर इन्द्र वहाँ आया और वास्तविक परिस्थिति देखकर जब वह लौटने लगा, तब अपाला ने उसे कहा कि मेरे दान्तों से चबाया हुआ सोम पी और धान आदि खा। इस प्रकार इन्द्र का अनादर करके उसने कहा कि यहाँ मैं तुझे नहीं पहचानती, तू मेरे घर आ, वहाँ मैं तेरा सम्मान करूँगी। इतना कहकर जब उसने

जाना कि अभ्यागत इन्द्र ही है, तब उसने अपने मुंह में रखे सोम से कहा कि तू इन्द्र के लिये धीरे-धीरे और बूंद-बूंद करके स्रवण कर। तब इन्द्र ने उस पर प्रसन्न होकर उसके मुख में चबाए हुए सोम को पिया और उसे वर मांगने के लिये कहा। अपाला ने तीन वर मांगे—१. मेरे गंजे पिता के सिर को रोम-युक्त कर, २. भूमि को उर्वरा कर तथा ३. मेरे गुह्य स्थान पर रोम उत्पन्न कर। इन्द्र ने तीनों वर पूरे करके अपाला को अपने रथ, अनस् और युग के छिद्रों में से खेंच कर उसकी त्वचा को सूर्य के समान शोभा वाली बना दिया।

ऋग्वेद ८.९१; देवता-इन्द्र; ऋषि: —आत्रेयी अपाला

कन्या वार् अवायती सोमम् अपि स्रुता ऽविदत्।
अस्तं भरन्त्य् अब्रवीद् इन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥१॥

कन्या ने जल के लिये जाती हुई ने सोम नाम ओषधि को पाया। घर को लाती हुई (कन्या) बोली—हे सोम ! मैं तुझे इन्द्र के लिये, तथा शक्र के लिये अभिषुत करती हूं ॥१॥

असौ य एषि वीरको गृहं-गृहं विचाकशत्।
इमं जम्भ-सुतं पिब धानावन्तं करम्भिणम् अपूपवन्तम्
उक्थिनम् ॥२॥

हे इन्द्र ! तू जो वीर और प्रकाशमान् है और घर-घर में घूमता है, मेरे इस दांतों से चबाये हुए और स्तुति द्वारा अर्पित धान वाले, सत्तू और अपूप से युक्त सोम को पी ॥२॥

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि।
शनैर् इव शनकैर् इवेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

तुझे हम जानना चाहती हैं, पर पा नहीं सकतीं। धीरे-धीरे

और हे सोम, तू इन्द्र के लिये क्रमशः, वह (स्रवण कर) ।।३।।

कुविच् छकत् कुवित् करत् कुविन् नो वस्यसस् करत् ।
कुवित् पति-द्विषो यतीर् इन्द्रेण सङ्गमामहै ।।४।।

वह (इन्द्र) बहुत सहायता करेगा और (हमारे लिये) बहुत कुछ करेगा और हमें प्रभूत धनवान् करेगा। पति से बहुत द्वेष करती हुई हम इन्द्र के साथ सङ्गम करें ।।४।।

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस् ततस्योर्वराम् आद् इदं म उपोदरे ।।५।।

ये तीन स्थान हैं, हे इन्द्र ! इन्हें तू प्ररोहित (अङ्कुरित) कर। पिता के (खल्वाट) सिर को, तदनन्तर भूमि को उर्वरा (उपजाऊ), और मेरे उदर के निकट स्थल को (प्ररोहित कर) ।।५।।

असौ च या न उर्वराऽऽद् इमां तन्वं मम ।
अथो ततस्य यच् छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ।।६।।

यह जो हमारी उर्वरा (उपज योग्य) भूमि है (उसे), इस मेरे तनु (पृथिवी तल) को और जो मेरे पिता का सिर है, इन सबको रोम (अर्थात् तृण-गुल्मादि से) युक्त कर ।।६।।

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शत-क्रतो ।
अपालाम् इन्द्र त्रिष्पूत्व्य् अकृणोः सूर्य-त्वचम् ।।७।।

हे इन्द्र ! तूने अपने आकाश वाले रथ, अनस् और युग से अपाला (उपेक्षित भूमि) को तीन प्रकार से पवित्र करके सूर्य के समान प्रकाशमान त्वचा वाली (हरी-भरी) कर दिया है ।।७।।

ऋचाओं का यथार्थ अभिप्राय

अपाला को आत्रेयी अर्थात् अत्रि की पुत्री कहा गया है। अत्रि की व्युत्पत्ति (उणादि० ४.६८) अद् 'भक्षणे' धातु से है। प्रलय समय प्रजापति समस्त चराचर विश्व का भक्षण कर (समेट) लेता है,

अतः वह 'अत्रि' है। वेदान्त दर्शन में भी उसे अद् धातु से 'अत्ता' कहा है (अत्ता चराचर-ग्रहणात्)। अतः 'अत्रि' और 'अत्ता' दोनों ही प्रजापति के वाचक हैं। प्रजापति 'हिरण्यगर्भ' ही है, जिससे पृथ्वी की उत्पत्ति हुई थी ('प्रजापतिर् वै हिरण्यगर्भः'—तैत्तिरीय संहिता, ५.५.१.२)। अतः अपाला पृथ्वी की उस अवस्था का नाम है, जब वह हिरण्यगर्भ से पृथक् होकर ठण्डी हो गई थीं, और उस पर 'रोम' अर्थात् वनस्पति आदि उत्पन्न नहीं हुई थीं। पृथ्वी के रोमहीन की पुष्टि में कई वैदिक प्रमाण हैं, यथा—

१. **इयं वा अलोमिकेवाग्र आसीत्** (ऐत ब्रा० २४.२२)

यह भूमि आरम्भ में रोमहीन अर्थात् वनस्पति-रहित थी।

२. **काल्वालीकृता हेयं तर्हि पृथिव्य् आस** (शत० ब्रा० २.२.४.३)

(आरम्भ में) पृथ्वी गंजी (अलोमिका) थी।

३. **ऋक्षा वा इयम् अलोमिका ऽऽसीत्** (तैत्तिरीय संहिता ७.४.३)

(यह पृथ्वी) जीवन रहित और लोमहीन थी।

कन्या—पृथ्वी को कन्या इसलिये कहा है कि यह आरम्भ में अक्षत थी अर्थात् इस पर हल आदि नहीं चलाए गए थे।

अपाला—'न पाली गई', इसलिये कहा है, कि उसकी रक्षा और पुष्टि जलादि से नहीं की गई थी। इस अवस्था में अपाला का पिता भूभृत्, धरणीधर, क्ष्माभृत् अर्थात् पर्वत था। और उसके सिर (ततस्य शिरः) अर्थात् चोटी पर भी रोम नहीं थे। वह वनस्पति-हीन होने से गंजा था। इसपर वनस्पति (रोम) उत्पन्न करने का अपाला ने इन्द्र से पहला वर माँगा था।

दूसरा वर उसे अर्थात् भूमि को उर्वरा (उपजाऊ) बनाने का था।

तीसरा वर—उदर के नीचे अर्थात् भूमि के गुह्य स्थल में भी कन्दमूलादि वनस्पति उगाने की प्रार्थना थी।

वृष्टि के देवता इन्द्र ने, जिसे इस सूक्त में शक्र और शतक्रतु भी कहा है, वर्षा करके अपाला के त्वचा के रोग को लता, गुल्म, वृक्ष, तृणादि उत्पन्न करके सूर्य के समान विकसित तल वाली लहलहाती हुई बना दिया।

पति-द्विष—मन्त्र ४ में अपाला (पृथ्वी) को 'पति-द्विष्' कहा है, और मन्त्र १ में 'कन्या' कहा है। ऋग्वेद में कन्या (लड़की) के मनुष्य से विवाह करने से पूर्व तीन दैवी शक्तियाँ अवस्था भेद से उसके पति कहे हैं—सोम, गन्धर्व और अग्नि। 'सोम' काम-वासना उत्पन्न होने से पूर्व कन्या की शान्त अवस्था का पति है। तत्पश्चात् कुमारी अवस्था में भीतर दबी काम भावना कुछ प्रादुर्भूत होने लगती है। उस अवस्था का पति 'गन्धर्व' कहा है। तीसरी अवस्था में कामाग्नि प्रदीप्त होने के समय उसका पति 'अग्नि' होता है। देखो ऋग्वेद (१०.८५.४०)—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।

तृतीयो अग्निष् टे पतिस् तुरीयस् ते मनुष्यजाः॥

पृथ्वी के प्रसङ्ग में केवल सोम, गन्धर्व और अग्नि ही उसके पति हो सकते हैं। हिरण्यगर्भ से पृथक् होने पर पृथ्वी अग्नि का एक दहकता हुआ गोला था, और वह उसकी प्रचण्ड उष्णता से प्रतप्त थी। जब कालान्तर में वह ऊपर से ठण्डी हो गई, तो वह उसकी शान्त 'कन्या' अवस्था थी, जबकि उसपर वनस्पति आदि रोमों का उद्गम नहीं हुआ था। उस समय 'सोम' उसका पति था। तदनन्तर जब अपाला के भीतर दबी अग्नि ऊपर उठने का प्रयत्न करने लगी, तब 'गन्धर्व' उसका पति हुआ। किन्तु जब आभ्यन्तर अग्नि ने प्रचण्डरूप ग्रहण करना आरम्भ किया, तब उसे शान्त करने और रोम (वनस्पति) उत्पादन करने के लिये उसको 'इन्द्र' से प्रार्थना करनी पड़ी। यही अपाला का अग्निरूपी पति से द्वेष था।

सातवीं ऋचा में आए 'रथ, अनस् और युग' पद सभी आलङ्कारिक हैं। वेद में दैवी शक्तियों का मानवरूप में वर्णन करने के कारण, तत्सम्बन्धी अङ्गों तथा उपकरणों को भी रथादि भौतिक पदार्थों के समान वर्णित किया गया है—देखो (ऋग्वेद १०.११२.२) **यस् ते रथो मनसो जवीयान् इन्द्र**...... (हे इन्द्र जो तेरा रथ मन से भी अधिक वेगवान् है......)। रथ से सम्बद्ध 'हरी' अर्थात् दो घोड़ों के जोड़े का भी उल्लेख है, देखो निघण्टु १.१५ 'हरी इन्द्रस्य', 'हरी इन्द्र' (ऋक्० ८.१३.२७) तथा 'इन्द्रम् इद्धरी वहतः' (यजु:, ८.३५)। ये दो अश्व जो इन्द्र अर्थात् विद्युत् का वहन करते हैं, वे उसके दो वज्र हैं, देखो, मैत्रायणी संहिता (३.६.६) **द्वौ वै वज्रौ घोरो ऽन्यो, यः शुष्कः सः घोरो य आर्द्रः स शिवः।** यही वर्णन काठक संहिता (२७.७) और कपिष्ठल संहिता (४१.५) में आया है। रामायण में भी विश्वामित्र ने राम को दो अशनियों (वज्रों) का ज्ञान दिया था—

"अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन" (२७.६)।

ये दो वज्र विद्युत् की रिणात्मक (शुष्क negative) तथा घनात्मक (आर्द्र positive) तरङ्गें हैं।

इन वज्रों की वेगवान् गति का नाम 'रथ' है, और धीमी गति का 'अनस्।' इन दोनों के 'युग' अर्थात् मिलाप से वर्षा होती है।

सरमा-पणि आख्यान

ऋग्वेद (१०.१०८) में वर्णित सरमा और पणियों के आख्यान पर बृहद्देवता (८.२४-३६) में निम्नलिखित कथा कही गई है—

रसा नदी के उस पार रहने वाले पणि नामक असुरों ने इन्द्र की गौओं का अपहरण कर लिया। बृहस्पति द्वारा इस घटना को जानकर इन्द्र ने सरमा को दूती बनाकर पणियों के पास भेजा। पणियों ने जब उससे आने का अभिप्राय पूछा, तब सरमा ने कहा कि वह इन्द्र की गौओं को ढूंढने आई है। पणियों ने उसे अपनी बहिन बनाना चाहा और कहा कि हम सब गौओं को आपस में बाँट लेंगे। उन्होंने सरमा को दूध पिलाया। तब सरमा विस्तृत रसा नदी को पार करके अपने पुर में चली गई। इन्द्र द्वारा गौओं के विषय में पूछने पर असुरों के दूध के प्रभाव के कारण सरमा ने कहा कि उसे गौओं का कुछ पता नहीं चला। इसपर इन्द्र ने क्रुद्ध होकर उसपर पाँव से प्रहार किया, जिससे वह दूध का वमन करती हुई पुनः पणियों के पास गई। इन्द्र ने उसके पीछे-पीछे जाकर पणियों का वध किया और गौएँ लौटा लाया।

सायण ने ऋग्वेद (१.६२.३) पर अपने भाष्य में शाट्यायन ब्राह्मण का आख्यान इस प्रकार दिया है :—

इन्द्र ने पणियों द्वारा चुराई हुई अपनी गौओं को ढूंढने के लिये सरमा को भेजना चाहा। सरमा ने कहा कि यदि मेरे शिशु के लिये उन गौओं का क्षीरादि अन्न दोगे तब जाऊँगी। इन्द्र ने इस बात को स्वीकार कर लिया। तदनन्तर सरमा ने जाकर गौओं के स्थान को ढूंढ लिया और लौटकर इन्द्र को बता दिया। तब इन्द्र ने जाकर असुर को मार डाला और गौओं को प्राप्त कर लिया।

ऋग्वेद १०.१०८

ऋषि: —१,३,५,७,९ पणयो ऽसुरा:; १,२,४,६,८,१०,११ सरमा देवशुनी । देवता—१,३,५,७,९ सरमा; १,२,४,६,८,१०,११ पणय: ।

किम् इच्छन्ती सरमा प्रेदम् आनड्
दूरे अध्वा जगुरि: पराचै: ।
कास्मे-हिति: का परितक्म्यासीत्
कथं रसाया अतर: पयांसि ॥१॥

क्या चाहती हुई सरमा यहाँ आई है? यह मार्ग दूर तक ले जाने वाला है। हमारे पास भेजने का क्या उद्देश्य है? तेरा भ्रमण कैसा रहा? तूने रसा (नदी) के जलों को कैसे पार कया ॥१॥

इन्द्रस्य दूतीर् इषिता चरामि
मह इच्छन्ती पणयो निधीन् व: ।
अतिष्कदो भियसा तन् न आवत्
तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥

तुम्हारे महान् निधियों को चाहती, मैं इन्द्र की भेजी हुई दूती घूम रही हूँ। पार करने के भय से उसने हमें बचाया, इस प्रकार मैंने रसा के जलों को पार किया ॥२॥

कीदृङ् इन्द्र: सरमे का दृशीका
यस्येदं दूतीर् असर: पराकात् ।
आ च गच्छान् मित्रम् ऐना दधामा-
था गवां गोपतिर् नो भवाति ॥३॥

हे सरमे वह इन्द्र कैसा है? उसकी आकृति (स्वरूप) कैसी है? जिसकी दूती बनकर दूर से यहाँ हमारे स्थान पर आई हो?

वह (इन्द्र) आए, हम उसे मित्र बनाएंगे। वह हमारी गौओं का स्वामी बनें ॥३॥

> नाहं तं वेद दभ्यं दभत् स
> यस्येदं दूतीर् असरं पराकात्।
> न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा
> हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४॥

वह (इन्द्र) हिंसनीय (मार खाने का) नहीं है, अपितु हिंसा के क्षम है, जिसकी दूती बनकर मैं दूर से यहाँ (इस स्थान पर) आई हूँ। उसे गहरी नदियाँ भी नहीं छिपा सकतीं। हे पणियो! तुम इन्द्र से मारे गए (सदा के लिये) सो जाओगे ॥४॥

> इमा गावः सरमे या ऐच्छः
> परि दिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती।
> कस् ते एना अव सृजाद् अयुध्व्य्
> उतास्माकम् आयुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥

हे सुन्दर सरमे! तू द्युलोक के अन्तिम छोर तक भागती हुई आई जिन गौओं को चाहती है, वे ये हैं। इनको तुझे बिना युद्ध के कौन देगा? हमारे शास्त्रास्त्र भी तो तीक्ष्ण हैं ॥५॥

> असेन्या वः पणयो वचांस्य्
> अनिषव्यास् तन्वः सन्तु पापीः।
> अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था
> बृहस्पतिर् व उभया न मृळात् ॥६॥

हे पणियो! तुम्हारे वचन असेन्य (बींधने या बिगाड़ने वाले नहीं) हैं। तुम्हारे पापी शरीर चाहे बाणों से अभेद्य हों। तुम्हारा मार्ग भी चाहे कितना ही दुर्गम्य हो, दोनों दशाओं में बृहस्पति (इन्द्र) तुम्हें नहीं छोड़ेगा ॥६॥

अयं निधिः सरमे अद्रि-बुध्नो
गोभिर् अश्वेभिर् वसुभिर् न्यृष्ठः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा
रेकु पदम् अलकम् आ जगन्थ ॥७॥

हमारा निधि अद्रि (मेघों) से बद्ध है और गौओं, घोड़ों और धनों से पूर्ण है। सावधान (चौकस) रक्षक पणि उसकी रक्षा करते हैं। इस शून्य स्थान पर तू व्यर्थ आई है ॥७॥

एह गमन्न् ऋषयः सोम-शिता
अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतम् ऊर्वं वि भजन्त गोनाम्
अथैतद् वचः पणयो वमन्न् इत् ॥८॥

ऊर्जा (सोम) से तीक्ष्ण, नूतन गतिशील (नवग्वाः), तथा दाहक (अङ्गिरसः) सूर्य-रश्मियें (ऋषयः) और अयास्य (इन्द्र=विद्युत्) आएँगे, और वे इस गौओं (किरणों) के समूह को बांट लेंगे (अर्थात् ये किरणें उन्हींमें मिल जाएँगी)। हे पणियो! अपने इस वचन को लौटा लो (अर्थात् ऐसा मत कहो) ॥८॥

एवा च त्वं सरम आजगन्थ
प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर् गा
अप ते गवां सुभगे भजाम ॥९॥

हे सरमे! तू दैव्यबल से बाधित की हुई इस प्रकार आई है, तुझे बहिन बनाते हैं, तू लौटकर न जा। हे सुन्दरि! हम तेरा भाग तुझे दे देंगे ॥९॥

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वम्
इन्द्रो विदुर् अङ्गिरसश् च घोराः ।
गो-कामा मे अच्छदयन् यद् आयम्
अपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥

मैं भ्रातृत्व और भगिनीत्व (कुछ) नहीं जानती। इन्द्र और भयङ्कर अङ्गिरा ही जानते हैं। जब मैं चली थी, वे गौओं की कामना वाले प्रतीत होते थे। इसलिये, हे पणियो ! तुम दूर भाग जाओ ॥१०॥

दूरम् इत पणयो वरीय
उद् गावो यन्तु मिनतीर् ऋतेन।
बृहस्पतिर् या अविन्दन् निगूढाः
सोमो ग्रावाण ऋषयश् च विप्राः ॥११॥

हे पणियो ! दूर चले जाओ। गौएँ पिधायक आवरण को तोड़ती हुई विधिपूर्वक प्रकट हों। जिन छिपी हुई (गौओं) को इन्द्र (बृहस्पति), ऊर्जा (सोम) तथा प्रहारक (ग्रावाणः) और व्यापक (विप्राः) सूर्य-रश्मियों (ऋषयः) ने ढूंढ लिया है ॥११॥

आख्यान का सारांश

इस सूक्त में सरमा और पणियों के संवाद का सारांश आधिदैविक है, जिसमें प्राकृत घटना का आलङ्कारिक ढंग से वर्णन किया गया है। यहाँ सरमा 'उषा' है, और उसे दौत्यकर्म के लिये भेजने वाला इन्द्र 'सूर्य' है। गौएँ 'सूर्य की किरणें' हैं, और पणि 'अन्धकार' हैं, जो सूर्य की किरणों को छिपा लेते हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या टिप्पणी में की गई है, और इस आख्यान से मिलने वाली शिक्षाएँ भी अन्त में दे दी गई हैं।

टिप्पणी

सरमा—सरमा मध्य-स्थानीय देवता है। इसकी व्युत्पत्ति सृ 'गतौ' धातु से है। यहाँ सरमा नाम उषा का है। सरमा के प्रकट होने के प्रकरण में ही ऋग्वेद (५.४५.८) में "अस्या व्युषि" अर्थात्

इस (सरमा) के चमकने अथवा 'पौ फटने पर' पाठ आया है। निरुक्त (२.१८) में उषा का निर्वचन है—उषा कस्माद् "उच्छतीति सत्या रात्रेर् अपरः कालः", उछी 'विवासे' 'निकाल देना या समाप्त करना।' अन्धकार को समाप्त करती है, इसलिये रात्रि के उत्तर काल को उषा कहा है। (उणादि० १०.२१३) वस् 'स्नेहच्छेदापहरणेषु', अन्धकार को अपहरण करने के कारण इसे उषा कहा है। उषा भी मध्यस्थानीया है। सरमा को 'देवशुनी' कहा गया है। देव अर्थात् इन्द्र अथवा सूर्य की शुनी। शुनी शब्द 'श्वन्' का स्त्रीलिंग है, जो श्वि 'गति-वृद्धयोः' से बनता है। यह शुनी भी गतिशील और विस्तार वाली होने के कारण सरमा का पर्यायवाचक है।

पणयः—ऋग्वेद (१.३२.११) में **"अतिष्ठन्न् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः"** अर्थात् 'पानी रुके हुए थे, जैसे वणिक् (व्यापारी) गौओं को बाड़े में रोक रखता है।' यहाँ गावः का अर्थ 'सूर्य-रश्मियाँ' होने से पणि का अर्थ 'रात्रि का अन्धकार' ही है, क्योंकि वह सूर्य-रश्मियों को रोक देता है।

इन्द्रः—'असौ वा आदित्य इन्द्रः' (मैत्रायणी संहिता, १.१०.१६; काठक संहिता, ३६.१०), **'एष वा इन्द्रो य एष (सूर्यः) तपति'** (शतपथ ब्राह्मण २.३.४.१२; ३.४.२.१५); **एष** (आदित्यः) **ह वा इन्द्रः** (जैमनीय ब्राह्मण २.१३४); **'स यस् स इन्द्र एष एवं स य एष (सूर्यः) एव तपति'** (जैमनीय ब्रा० उ० १.९.१२; १०.२.५)। इन प्रमाणों से सिद्ध है, कि इस प्रकरण में इन्द्र नाम आदित्य (सूर्य) का है।

गावः—इस संवाद में 'गावः' सूर्य की रश्मियाँ हैं। देखो ऋग्वेद (१.१५३.६) **'यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः'** इसकी व्याख्या में निरुक्त में 'सर्वे रश्मयो गाव उच्यन्ते' कहा है। निघण्टु (१.५) में 'गावः' रश्मि के नामों में पढ़ा गया है।

ऋषयः—इस शब्द की व्युत्पत्ति ऋष् 'गतौ' धातु से है। ऋषयः

का अर्थ 'गतिशील' हुआ, किन्तु वेद (१०.७३.११) में 'ऋषयः' 'सुपर्णाः' का विशेषण है। 'सुपर्णा' निघण्टु (१.५) में रश्मि नाम में पढ़ा है। कई बार विशेषण विशेष्य के स्थान पर भी प्रयुक्त हो जाता है, अतः यहाँ 'ऋषयः' सूर्य की रश्मियों का वाचक है। "षड् इद् यमा ऋषयो देवजा इति" (ऋग्वेद १.१६४.१५) पर भी 'ऋषयः' का अर्थ निरुक्त (१३.२.३२ परिशिष्ट) में 'ऋषीणां रश्मीनां' किया है।

बृहस्पतिः—इस पद के वेद में अनेक अर्थ हैं। निरुक्त (१०.११) में निर्वचन किया है 'बृहतः पाता वा पालयिता वा' अर्थात् 'महान् का रक्षक या पालक।' अतः यहाँ वृष्टि द्वारा बृहत् जगत् की पालना करने से बृहस्पति 'इन्द्र' (सूर्य) का वाचक है।

अङ्गिरसः—निरुक्त (३.१७) में **'अङ्गारेष्व् अङ्गिरः,'** अर्थात् अङ्गारों में अङ्गिरः हुआ। ऐतरेय ब्राह्मण (३.३४) में **'ये ऽङ्गारा आसन् ते ऽङ्गिरसो ऽभवन्'** अर्थात् 'जो अङ्गारे थे वे ही अङ्गिरस् बने।' शतपथ ब्राह्मण (६.४.४.४) में **'अङ्गिरा उ ह्य् अग्निः'** अर्थात् अङ्गिरा ही अग्नि है। उणादि कोष में 'अङ्गेर् असि' (४.२३६) से व्युत्पत्ति की है। इसपर स्वामी दयानन्द जी के भाष्य में 'अङ्गति प्राप्नोति ..... स अङ्गिरा.. अग्निः' का वाचक है। अग्नि दाहक होने के कारण यहाँ अङ्गिरस् का अर्थ 'दाहक' है। अतः 'अङ्गिरसः ऋषयः' का अर्थ 'दाहक रश्मियाँ' है।

नवग्वाः—निरुक्त (११.१९) में इसकी व्युत्पत्ति 'नव-गतयो नवनीत-गतयो वा' की है। यह भी 'ऋषयः' का विशेषण है, जो कि प्रतिदिन नई गतिशील होने के कारण नवग्वाः सूर्य-रश्मियाँ हैं।

ग्रावाणः—ग्रावाणः भी 'ऋषयः' का विशेषण है। निरुक्त (९.८) में **'ग्रावाणो हन्तेर् गृणोतेर् वा गृह्णातेर् वा** व्युत्पत्ति की है। अतः यहाँ गृह्णातेः से ग्रहण करने वाली सूर्य-रश्मियाँ अभिप्रेत हैं, जो भूमि से जल को वाष्प बनाकर ग्रहण कर लेती हैं।

विप्राः—यह भी 'ऋषयः' का विशेषण है। इसकी व्युत्पत्ति वि-प्रा 'पूरणे' धातु से की गई है। सूर्यरश्मियां उदयकाल में संसार को प्रकाश से भर देती है। ऋग्वेद (६.६६.६) में 'ऋषिर् विप्राणाम्' पर निरुक्त (परिशिष्ट १३.२.१३) में '**विप्राणां व्यापन्नकर्मणाम् आदित्य-रश्मीनाम्**' भाष्य किया है।

रसा—यह एक काल्पनिक अन्तरिक्षस्थ नदी है। इसकी व्युत्पत्ति रस् 'शब्दे' धातु से है। वेद में अन्तरिक्षस्थ नदियों का वर्णन आता है। ये नदियाँ वाष्प समूहों से बनती हैं, जो मेघों के रूप में शब्द करती हुई वृष्टि-पात करती हैं।

शिक्षाएं

(१) अन्धकार प्रकाश को ढांपता है, और वह अन्त में सूर्योदय पर नष्ट हो जाता है। यहाँ पर अन्धकार अज्ञान, अविद्या, असत्य, अन्याय आदि का प्रतीक है, और सूर्य रश्मियें ज्ञान, विद्या, सत्य, न्याय आदि की प्रतीक हैं। ज्ञानोदय पर अविद्यादि अन्धकार का नाश हो जाता। इसी आधार पर शतपथ ब्राह्मण (१४.३.१.३०) में लिखा है, "**असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर् गमय**" अर्थात् हे प्रभो, मुझे असत्य से सत्य पथ पर, और अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाओ।

(२) यहाँ इन्द्र ने सरमा को दूती बनाकर भेजा। इससे सिद्ध होता है कि शत्रुओं के घर का पता निकालने के लिये स्त्रियां दूती बनकर भी सफलतापूर्वक उद्देश्य को प्राप्त कर लेती हैं।

(३) सरमा को (ऋग्वेद, ३.३१.६) में 'सुपदी' कहा है। इससे स्पष्ट है कि दूत अथवा दूती शीघ्र विना विलम्ब और आलस्य के अपने उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। सरमा शब्द स्वयं गति बोधक है, अतः दूत को गतिशील होना चाहिये।

(४) इसी मन्त्र में सरमा को '**अद्रे रुग्णं विदत्**' भी कहा, कि वह अद्रि का टूटा द्वार जानती थी। इससे ज्ञात होता है, कि दूत को

शत्रु के त्रुटित अर्थात् दुर्बल स्थान को जानकर अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिये वहाँ से कार्य आरम्भ करना चाहिये।

(५) ऋग्वेद १.६२.३ में कहा है **'विदत् सरमा तनयाय धासिम्** अर्थात् सरमा ने अपने शिशु के लिये अन्न प्राप्त किया। इससे यह शिक्षा मिलती है, कि राजा को अपने दूत और उसके परिवार की आजीविका का पूरा प्रबन्ध करना चाहिये। तभी वह सफल हो सकता है।

(६) पणियों ने ऋग्वेद (१०.१०८.५) में सरमा को धमकी दी कि हमारे शस्त्र बड़े तीक्ष्ण हैं, हम विना युद्ध के गौओं को नहीं छोड़ेंगे। इसपर सरमा ने बड़ी निर्भयता से कहा तुम्हारी धमकी खोखली है, चाहे तुम कितने ही बलवान् हो परन्तु तुम्हारे जैसे पापियों को इन्द्र नहीं छोड़ेगा। इससे सिद्ध है कि दूत को निर्भीक होना चाहिये।

(७) इस संवाद सूक्त के मन्त्र ९ में पणियों ने उसे बहिन बनाना चाहा और उसे गौओं का भाग देने का प्रलोभन दिया, किन्तु मन्त्र १० में सरमा ने कहा **'नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वम्**, मैं बहिन-भाई का नाता नहीं जानती। अतः दूत ऐसा होना चाहिये जो प्रलोभन में न फँसे और उत्कोच, घूस आदि स्वीकार न करे।

(८) ऋग्वेद ५.४५.७ में कहा है **'ऋतं यती सरमा गा अविन्दत्'** 'सीधा जाकर सरमा ने गौओं को पा लिया।' इससे प्रतीत होता है, कि दूत को सीधा अपने लक्ष्य पर पहुंचना चाहिये। व्यर्थ इधर-उधर की बातों में समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

ऋग्वेद के इस आख्यान से राजनीति की उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त होती है, कि राजा को शत्रुओं का भेद जानने और अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिये, कुलीन, चरित्रवान्, निर्भय, बुद्धिमान्, निरालस्य और प्रलोभन में न आने वाले दूतों को नियुक्त करना चाहिये।

वसिष्ठ की उत्पत्ति का आख्यान

ऋग्वेद ७.३३.१०,११ की इन दो ऋचाओं में मित्र और वरुण द्वारा वसिष्ठ की उत्पत्ति का वर्णन आया है। वास्तविक आधिदैविक पक्ष को न समझकर बृहद्देवता तथा पुराणों में इस कथा को अत्यन्त ही बीभत्स और विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

बृहद्देवता (५.१४९-१५२) में कथा

इन (अदिति के १२ पुत्रों में से) दो आदित्यों (मित्र और वरुण) ने जब उर्वशी को एक यज्ञ सत्र में देखा तब उनका वीर्य स्कन्दित हो गया और वह जल से भरे कुम्भ में गिर पड़ा, जो रात भर वहां पड़ा रहा। उसी क्षण वहाँ दो वीर्यवान्, तपस्वी ऋषि अगस्त्य और वसिष्ठ उत्पन्न हो गए। यतः वह वीर्य विविध रूपों से कुम्भ, जल, और स्थल पर गिरा था, अतः ऋषि-श्रेष्ठ मुनि वसिष्ठ स्थल पर उत्पन्न हुए, जब कि अगस्त्य कुम्भ में, और महाद्युतिमान् मत्स्य जल में उत्पन्न हुए।

भविष्य पुराण में तो यहाँ तक लिखा हुआ है, कि—

गणिका-गर्भ-सम्भूतो वसिष्ठश् च महामुनिः।
कर्मणा ब्राह्मणो जातः संस्कारस् तत्र कारणम् ॥

वसिष्ठ नामक महामुनि वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। वह अपने कर्म से ब्राह्मण बन गया, इसमें उसके संस्कार ही कारण थे।

इस प्रकार के विकृत और घिनावनें अनर्थों का कारण यह है, कि ये लौकिक लेखक प्राचीन निरुक्तादि ग्रन्थों का आधार न लेते हुए वेद के मन्त्रों में आए शब्दों का रूढ अर्थ ही लेनें लगे थे। इस लिए वे वेद के वास्तविक रहस्य को न जान सके।

यास्काचार्य के निरुक्त [५.१४] में लिखा है—"तस्या [उर्वश्याः]

दर्शनात् मित्रावरुणयो रेतश् चस्कन्द।" साधारण लौकिक दृष्टि से तो उर्वशी के देखने पर मित्रावरुण का वीर्य स्खलित हो गया, यही अर्थ निकलता है। किन्तु इन पदों का वास्तविक अर्थ निम्नलिखित है---

शतपथ ब्राह्मण (१.८.३,१२) में मित्रावरुणी को प्राण और उदान वायु कहा है, **'प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ'**। मित्र 'प्राण' नामक वायु (गैस) है, और वरुण 'उदान' वायु है। ये दोनों वायुएं उर्वशी अर्थात् विद्युत् से संयुक्त होती हैं, तो वसिष्ठ अर्थात् 'जल' की उत्पत्ति होती है।

वर्तमान काल के वैज्ञानिकों ने भी ओषजन (oxygen) तथा उदजन (hydrogen) के विद्युत् (electrolysis) द्वारा सम्मिलन होने से जल की उत्पत्ति सिद्ध की है।

उर्वशी—उर्वशी विद्युत् है, इसके लिये देखो निरुक्त (५.१३) **'उर्वभ्युश्नुते'** अर्थात् दूर तक पहुँच जाती है। निरुक्त के टीकाकार स्कन्द स्वामी तथा दुर्गाचार्य दोनों ने **'उर्वशी विद्युत्'** ऐसा अर्थ किया है। इसी प्रकरण में उर्वशी को 'अप्सरा' भी लिखा है, जिसका अर्थ है **'अप्सु सरतीत्यप्सरा:'** आपों (जल) में विचरने वाली (निघण्टु १.१२)। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि प्राण और उदान वायुओं का जब विद्युत् से सम्पर्क होता है, तब वसिष्ठ (जल) की उत्पत्ति होती है। स्कन्द स्वामी ने भी **'वसिष्ठ'** का अर्थ 'उदक-संघात:' अर्थात् 'जल-समूह' किया है।

टिप्पणी

द्रप्स:—ऋग्वेद ७.३३.११ पर यास्क ने निरुक्त (५,१३) में **द्रप्सं स्कन्नं** की व्याख्या में लिखा है—'तस्या (उर्वश्या:) दर्शनात् मित्रावरुणयो रेतश् चस्कन्द," अर्थात् प्राण और उदान वायु का उर्वशी (विद्युत्) के दर्शन अर्थात् सम्पर्क से रेतस् (द्रप्स) अर्थात्

'वर्षा का जल' गिरा । निघण्टु (१.१२) में 'रेतस्' जल के नामों में पढ़ा गया है ।

वेद में मित्र, वरुण, उर्वशी आदि जो पद आते हैं वे सब मध्य-स्थानी देवता हैं । ये अन्तरिक्ष की शक्तियें हैं पृथिवी का इतिहास नहीं हो सकतीं ।

मित्र और वरुण का जलों से सम्बन्ध है (देखो, ऋग्वेद ३.६२. १६) **"आ नो मित्रावरुणा घृतैर् गव्यूतिम् उक्षतम्"**–हे मित्रावरुण ! तुम हमारी भूमि जलों से सिञ्चित करो । अन्यच्च– (अथर्ववेद, ५.२४.५) **"मित्रावरुणौ वृष्टया अधिपती तौ मा ऽवताम् ।"**

प्रभुत्वशाली मित्रावरुण वृष्टि द्वारा मेरी रक्षा करें । अथ च, **"मित्रावरुणौ वा अपां नेतारौ"** (तैत्तिरीय संहिता ६.४.३.२), मित्रा-वरुण जलों को लाने वाले हैं ।

इन प्रमाणों से सिद्ध है, कि मित्र और वरुण 'प्राण और उदान' (Oxygen and Hydrogen) हैं, ऋषि अथवा मनुष्य नहीं । इन्हें मनुष्य कहने वालों ने केवल मिथ्या भ्रम फैलाया है ।

निम्नलिखित दो ऋचाओं के आधार पर ही यह व्याख्यान घड़ा गया है—ऋग्वेद ७.३३—

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यद् अपश्यतां त्वा ।
तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत् त्वा विश आजभार ॥१०॥

हे वसिष्ठ ! जब मित्र और वरुण ने तुझे विद्युत् से निकलती हुई ज्योति (झलक) के रूप में देखा, वह तेरा एक जन्म था, जब अगस्त्य तुझे तेरे निवास-स्थान से ले आया ।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसो ऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वा ऽऽददन्त ॥११॥

हे वसिष्ठ ! तू मित्र और वरुण का पुत्र है । हे ब्रह्मन् ! तू उर्वशी

की मनः-कामना से उत्पन्न हुआ है। उस समय (मित्र और वरुण के संयोग से) गिरे हुए (जल) बिन्दु रूप में सब देवताओं ने तुझे 'पुष्कर' (निघण्टु १.३ 'अन्तरिक्ष') में धारण किया।

अगस्त्य—अगानां वृक्षाणां संस्त्यानं संघातः अर्थात् गहन वन जो कि मेघों को आकृष्ट करके वसिष्ठ रूपी जल को उसके निवास-स्थान अन्तरिक्ष से वर्षा रूप में नीचे लाते हैं।

इन ऋचाओं में अलंकार रूप से वसिष्ठ (जल) की उत्पत्ति का वर्णन है।

दध्यङ् (दधीच) की अस्थियाँ तथा अश्वियों को मधुविद्या का उपदेश

ऋग्वेद १.८४.१३ मन्त्र पर सायण भाष्य में शाट्यायन ब्राह्मण का आख्यान उद्धृत है। अथर्वन् का पुत्र दध्यङ् जब जीवित था, तब उसके देखने से ही असुर पराजित हो गये थे। जब उसकी मृत्यु हो गई तो पृथिवी असुरों से भर गई। इन्द्र उन असुरों के साथ युद्ध करने में असमर्थ था। वह इसलिये स्वर्ग में जाकर पूछने लगा कि क्या उस दध्यङ् ऋषि का कोई अङ्ग शेष है? देव बोले हाँ एक अश्व का सिर है, जिसके द्वारा उसने अश्वियों को मधुविद्या सिखाई थी। पर हमें नहीं पता वह कहाँ है? फिर इन्द्र ने कहा कि उसे ढूंढो। तब उन्होंने ढूंढकर बताया कि वह शर्यणावत् सरस् में पड़ा है। इन्द्र ने उस सिर की अस्थियों से वज्र बनाकर असुरों का वध किया।

इसी मन्त्र पर स्कन्द स्वामी ने अपने भाष्य में निम्नलिखित आख्यान प्रस्तुत किया है—

'कालकञ्ज नाम के असुर थे। उनसे पीड़ित हुए देवता रक्षा का उपाय पूछने ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें दध्यङ् ऋषि के पास उपाय जानने के लिये भेजा। देवता उसके पास गए। ऋषि ने योग ध्यान द्वारा उसके आने का प्रयोजन जानकर, अपने प्राणों को त्याग दिया। उसकी अस्थियों से इन्द्र ने असुरों का वध किया।'

इसी सूक्त के १४वें मन्त्र पर स्कन्द स्वामी ने एक अन्य आख्यान दिया है—'इन्द्र ने अथर्वन् के पुत्र दध्यङ् को 'मधु' नामक परब्रह्म विद्या का प्रवचन किया, और उस ऋषि को कहा कि यदि किसी अन्य को यह विद्या बताओगे तो तुम्हारा सिर गिर जाएगा। ऋषि के पास मधुविद्या जानने को अश्वी पहुँचे, और कहा कि हमारे लिए परब्रह्म का प्रवचन करो। ऋषि ने सिर गिर जाने की बात बता कर प्रवचन करने से निषेध कर दिया। तब अश्वियों ने कहा हम तुझे अन्य सिर लगा देंगे। दध्यङ् मान गया। अश्वियों ने उसका सिर काटकर अश्व का सिर लगा दिया। उस सिर से तब ऋषि ने उन्हें मधु विद्या का अध्यापन कराया।'

शौनक ने 'वृहद्देवता' (अध्याय ३, श्लोक १७-२४) में निम्न-लिखित आख्यान कहा है—

'इन्द्र ने प्रसन्न होकर अथर्वन् के पुत्र को मधुविद्या दी, और उसे किसी अन्यको बताने का निषेध करते हुए कहा कि यदि बताओगे तो तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा। तब दोनों अश्वी एकान्त में जाकर उस ऋषि से मधुविद्या का ज्ञान माँगने लगे। ऋषि ने इन्द्र की दी धमकी उन्हें बता दी। तब अश्वियों ने उसे कहा कि अश्व के सिर द्वारा हमें वह विद्या सिखा दो, तो इन्द्र तुम्हें नहीं मारेगा। ऋषि ने अश्वशिर द्वारा विद्या बता दी। इन्द्र ने उसका वह अश्वशिर काट दिया, तो अश्वियों ने उसका अपना (वास्तविक) सिर लगा दिया। इन्द्र ने उस अश्वशिर को वज्र से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर

दिया, और वह शर्यणावत् पर्वत पर एक सर में जा गिरा। वहाँ वह सिर जल से उठकर प्राणियों को वर देता है, और युग-पर्यन्त वहीं पड़ा रहता है।

ऋग्वेद के १.८४. १३,१४ ऋचाओं पर भिन्न-भिन्न प्रकार के आख्यान हैं। एक आख्यान में तो इन्द्र ने दध्यङ् ऋषि की अस्थियों से असुरों का वध किया। और १४वीं ऋचा पर के आख्यान में कहा है कि दध्यङ् ऋषि ने अश्व के सिर द्वारा अश्वियों को मधु (पर ब्रह्म) विद्या का प्रवचन किया। मधुविद्या को अश्वियों को देने का वर्णन ऋग्वेद में अन्यत्र भी है। १. ११६.१२

दध्यङ् ह यन् मध्वाथर्वणो वाम् अश्वस्य शीर्ष्णा प्र यद् ईम् उमुवाच ॥

और १. ११७. २२—

अथर्वणायाश्विना दधीचे ऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्। स वां मधु प्र वोचद् ऋतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्राव् अपिकक्ष्यं वाम् ॥

इन दो भिन्न-भिन्न आख्यानों पर भी भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है। कथानकों का भेद सिद्ध करता है कि यह मानवीय इतिहास नहीं। यदि मानवीय इतिहास होता, तो इस प्रकार के विरोधी कथानक न बनते।

इन दो आख्यानों का वास्तविक रहस्य हम आगे स्पष्ट करते हैं—

दैवी पक्ष

प्रथम हम इस ऋचा के दैवी पक्ष का निर्णय करते हैं। दध्यङ् द्यु-स्थानी है, और यह आदित्य की अवस्था विशेष का नाम है। ऋग्वेद १.८०.१६ में स्कन्द स्वामी ने भी अथर्वा, मनु और दध्यङ् को आदित्य तेज की विशेष अवस्थाएँ बताया है—**एते त्रय आदित्य-तेजो ऽवस्था-विशेषाः।** इस दध्यङ् आदित्य की सोम छोड़ने वाली रश्मियाँ ही उसकी अस्थियाँ हैं। उन्हीं अस्थियों से इन्द्र (विद्युत्) बल प्राप्त करके वृत्र (मेघों) का हनन करता है।

विशेष—यास्क ने निरुक्त (१२.३४) में दध्यङ् के दो निर्वचन किये हैं। उनमें से प्रथम **'दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानम्,'** जो ध्यान की ओर अभिमुख है,' अर्थात् ध्यान-मग्न है। यह निर्वचन आध्यात्मिक पक्ष का है। दूसरा **'प्रत्यक्तम् अस्मिन् ध्यानम्,'** 'जिसकी ओर ध्यान जाता है,' यह सूर्य है जिसकी ओर सबका ध्यान जाता है।

ऋग्वेद ६.२७.५—

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि।

इसपर सायण अपने भाष्य में लिखता है—**एष पवमानः पूयमानः सोमः सूर्येण देवेन अधि द्यवि द्युलोकेऽन्तरिक्षे हासते परित्यज्यते।**

यह पवित्र सोम सूर्य द्वारा अन्तरिक्ष में छोड़ा जाता है। सोम एक प्रकार की ऊर्जा है, जो सूर्य रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में विद्युत् (इन्द्र) को प्राप्त होती है। जिससे इन्द्र, मेघों का हनन करता है, अर्थात् वर्षा करता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि भूमि पर एक ओषधि-विशेष का नाम भी सोम है। वह इस सोम से भिन्न है।

आध्यात्मिक पक्ष

दध्यङ् द्वारा दी गई मधुविद्या—बृहदारण्यक उपनिषद् (२.५.५) में वेद मन्त्रों के आधार पर मधुविद्या अर्थात् परब्रह्मविद्या का वर्णन इस प्रकार है—

यहाँ पर इन्द्र परमात्मा का वाचक है, और दध्यङ् ईश्वर के ध्यान में मग्न व्यक्ति का वाचक है।

"इदं वै तन् मधु दध्यङ् आथर्वणोऽश्विभ्याम् उवाच। तद् एतद् ऋषिः पश्यन्न् अवोचत्—'तद् वां नरा सनये दंस उग्रम् आविष्कृणोमि तन्यतुर् न वृष्टिम्। दध्यङ् ह यन् मध्वाथर्वणो वाम् अश्वस्य शीर्ष्णा

प्र यद् ईम् उवाच ।।' (ऋ० १.११६.१२) इदं वै तन् मधु दध्यङ् आथर्वणो ऽश्विभ्याम् उवाच । तद् एतद् ऋषिः पश्यन्न् अवोचत्— 'आथर्वणायाश्विना दधीचे ऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् । स वां मधु प्र वोचद् ऋतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्राव् अपिकक्ष्यं वाम् ।।(ऋ० १.११७. २२)इति । इदं वै तन् मधु दध्यङ् आथर्वणो ऽश्विभ्याम् उवाच । तद् एतद् ऋषिः पश्यन्न् अवोचत्—'पुरश्चक्रे चतुष्पदः पुरः स पक्षीभूत्वा पुरः पुरुष आविशद् इति, स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयो नैनेन किञ्चनावृतं नैनेन किञ्चनासंवृतम्' । इदं वै तन् मधु दध्यङ् आथर्वणो ऽश्विभ्याम् उवाच । तद् एतद् ऋषिः पश्यन्न् अवोचद्— 'रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव तद् अस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ।।' (ऋग्वेद ६. ४७.१८) इत्ययं वै हरयो ऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तद् एतद् ब्रह्मा ऽपूर्वम् अनपरम् अनन्तरम् अबाह्यम् । अयम् आत्मा ब्रह्म सर्वानुभूर् इत्य अनुशासनम् ।।

अनुवाद—यह है वह मधु (विद्या) जो आथर्वण दध्यङ् नें अश्वियों को बताई । उस इसको ऋषि (कक्षीवान्) नें देखते हुए कहा—

'हे वीरो ! मैं तुम्हारे उस धन-प्राप्ति के लिये किये हुए उग्र कर्मको प्रकट करता हूँ, जैसे कड़कती विद्युत् आसन्न वृष्टि को (प्रकट करती है) । आथर्वण दध्यङ् ने अश्व के शीर्ष से जो तुमको बताई थी ।' (ऋ० १.११६.१२)

यह है वह मधु (विद्या) जो आथर्वण दध्यङ् ने अश्वियों को बताई थी । उस इसको ऋषि (कक्षीवान्) ने कहा—

'हे अश्वियो ! तुमने आथर्वण दध्यङ् के स्कन्ध पर अश्व का शिर स्थापित किया । हे दर्शनीयो ! उसने सत्य का पालन करते हुए तुम्हें त्वष्टा (इन्द्र) द्वारा दी गई रहस्यमयी मधुविद्या का प्रवचन किया ।' (ऋ० १.११७.२२)

यह है वह मधु (विद्या) जो आथर्वण दध्यङ् नें अश्वियों को बताई थी। उस इसको ऋषि कक्षीवान् नें कहा—

'वह इन्द्र (परमात्मा) प्रत्येक रूप में तत्सदृश रूप हो जाता है। यही (अग्नि, सूर्यादि) उसका रूप (हमारे) देखने के लिये है। इन्द्र (परमात्मा) अपनी अनेक शक्तियों से नाना रूप में प्रकट होता है। इसके (रथ में) सहस्रों हरि जुते हुए हैं, अर्थात् सहस्रों शक्तियाँ काम कर रही हैं)। (ऋ० ६.४७.१८)

यही हैं हरि और यही हैं दस और सहस्रों अर्थात् बहुत और अनन्त (शक्तियाँ) वह यह ब्रह्म अनादि और अनन्त है। इसके लिये न कोई अभ्यन्तर है, व वाह्य। यह आत्मा ही ब्रह्म है, और सर्व-द्रष्टा है। यही आदेश है।

टिप्पणी

'इन्द्र' नाम परमात्मा का है। इसमें प्रमाण है—

१. इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निमाहुर् अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्य् अग्निं यमं मातरिश्वानम् आहुः॥ (ऋग्वेद १.१६४.४६)

इस मन्त्र में इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, यम, मातरिश्वा आदि सभी परमात्मा के ही नाम कहे गए हैं।

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच् छव इन्द्रः सूर्यम् अरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः॥
(ऋग्वेद ८.३.६)

इन्द्र ने अपनी शक्ति से द्यौ और पृथिवी का विस्तार किया। शक्तिशाली इन्द्र ने सूर्य को प्रकाशित किया। इन्द्र ने ही सारे भुवनों को वश में कर रखा है। सोम भी इन्द्र के आधीन है।

२. **दध्यङ्**—अथर्वा का पुत्र आथर्वण । अथर्वा=इन्द्र का पर्यायवाची 'निश्चल अथवा अटल परमात्मा'। ध्यान में मग्न दध्यङ् को परमात्मा का पुत्र' कहा गया है ।

३. **अश्व्यं शिरः** अथवा **शीर्षन्** क्या है ? **वीर्यं वा अश्वः** (शत० २.१.४.२३) अश्व का अर्थ है वीर्य या बल। Derived from अश् to reach, to arrive at; which reaches quickly, Hence. **अश्व्यं शिरः** head that can think and decide quickly. क्षिप्रकारिणी तर्क बुद्धि ।

४. **अश्विनौ**—ऋग्वेद (८.२२.१४) में अश्वियों के विषय में कहा है— **'ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती'** 'वे दो कल्याण के अधिष्ठाता (अश्वी) रात्रि और उषा के समय हैं ।' इससे अश्वियों का सम्बन्ध रात्रि और उषा से प्रतीत होता है । निरुक्त (१२.१) में भी अश्वियों को अहोरात्र कहा है—**'अहोरात्राव् इत्य् एके ।'** अर्थात् एक मत में इन्हें दिन और रात माना है। 'दिन' है प्रतीक 'विद्या' का और 'रात' है 'अविद्या' का। अतः दो अश्वी ज्ञानकाण्डी और कर्मकाण्डी व्यक्तियों के द्योतक हैं। इसके लिये देखो यजु० अ० ४० अथवा ईशोपनिषद् ८.११) ।

विद्यां चाविद्यां च यस् तद् वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया ऽमृतम् अश्नुते ।।

जो अविद्या की उपासना करते हैं, अर्थात् कर्मकाण्ड में लगे रहते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं, और जो विद्या अर्थात् केवल 'ज्ञान' की उपासना करते हैं, वे उससे भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं। क्योंकि वे ज्ञानी होते हुए भी कर्महीन होते हैं ।

आख्यान का यथार्थ रूप

आथर्वण दध्यङ् परमात्मा में लीन होने के कारण उसका पुत्र कहा गया है। ईश्वर की प्रेरणा से उसकी बुद्धि में मधुविद्या अर्थात्

परब्रह्म के ज्ञान का उदय हुआ। उसके मन में यह धारणा बैठ गई कि यह रहस्य किसीको न बताया जाए। तदनन्तर अश्विद्वय अर्थात् एक कर्म-काण्डी, दूसरा ज्ञानकाण्डी दोनों ने उसके पास आकर प्रार्थना की कि उन्हें वह मधु अर्थात् ब्रह्मविद्या का उपदेश दे। दध्यङ् ने अपनी दृढ़ धारणा के कारण उन्हें उपदेश देने का निषेध कर दिया। तब उन अश्वियों ने उसकी क्षिप्रकारिणी तर्क बुद्धि को प्रेरित करते हुए कहा कि यह विद्या तो कल्याणकारिणी है, इसे अवश्य हमें प्रदान करना चाहिये। तब दध्यङ् ने विश्वस्त और सन्तुष्ट होकर उन्हें मधुविद्या का उपदेश दिया। और कहा कि केवल कर्मकाण्ड से ही ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि कर्म-काण्डी ज्ञान-विहीन होता है। इसी भाँति ज्ञान-काण्डी को भी कर्म-विहीन होने से ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती। अतः दध्यङ् ने उन्हें कहा कि—हे कर्म-काण्डी और ज्ञान काण्डी ! तुम दोनों ब्रह्मविद्या को तभी पा सकोगे, जब तुम दोनों में ज्ञान और कर्म दोनों एक साथ उपस्थित हो जाएँगे।

यह सारा आख्यान आलंकारिक है, इतिहास नहीं है।

अगस्त्य तथा लोपामुद्रा का आख्यान

ऋग्वेद (१.१७९) सूक्त की छः ऋचाओं में लोपामुद्रा और अगस्त्य का संवाद है। इस संवाद को देखकर ही कई लोगों ने इसे ऐतिहासिक तथ्य माना है। किन्तु सारे सूक्त का मनन करने से सिद्ध होता है कि यह आलंकारिक वर्णन है, ऐतिहासिक नहीं। 'अगस्त्य' पद से उस व्यक्ति का ग्रहण है, जो अपनी शक्ति से बड़े से बड़े पर्वत के समान कठिन विघ्नों को भी जीत सकता है। पर वह अगस्त्य भी मोहक आकृति वाली लोपामुद्रा को देखकर कामासक्त हो गया, और अपने-आपको वश में न रख सका।

इस आलंकारिक वर्णन से यह सिद्ध होता है, कि बड़े से बड़े संयमी स्त्री और पुरुष भी कामवासना से विचलित हो जाते हैं।

मनु ने लिखा है—

बलवान् इन्द्रिय-ग्रामः विद्वांसम् अपि कर्षति।

अर्थात् इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं, कि बुद्धिमान् व्यक्ति को भी विचलित कर देती हैं।

गीता में भी कहा है—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः। (२.६१)

हे अर्जुन! विचलित करने वाली इन्द्रियाँ यत्नशील बुद्धिमान् पुरुष के मन को भी बलपूर्वक हर लेती, अर्थात् आकृष्ट करके गिरा देती हैं।

आदित्य ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द ने भी सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि काम के वेग को रोकना बड़ा कठिन है।

यह अगस्त्य और लोपामुद्रा पुरुष और स्त्री के प्रतीकमात्र हैं, वे वास्तविक व्यक्ति नहीं हैं। ऋचा में कहा है कि बड़े-बड़े सत्य नियमों को पालन करने वाले भी इस कामवासना का अन्त नहीं पा सके। तीसरी ऋचा में कहा है कि महाबली अगस्त्य भी विचलित हो गया, और कामासक्ति से परिभूत होकर संयोग करने में प्रवृत्त हो गया।

युवा स्त्री-पुरुष जब एक दूसरे को देखते हैं; तब स्वाभाविक रूप से ही उनमें कामवासना उत्पन्न हो जाती है। ऋचा ५,६ में कहा है कि मनुष्य बहुत कामना वाला होता है। वह धन, सन्तान, और यश तीन प्रकार की एषणाओं (=पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा) से युक्त है।

इस सूक्त से यह भी स्पष्ट होता है कि कामवासना केवल

पौष्टिक आहार खाने वाले को ही नहीं सताती, अपितु कन्द मूल खाने वाला वनवासी भी आकर्षक स्त्री को देखकर कामासक्त हो जाता है।

एक बात और जो इस सूक्त में ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि अगस्त्य और लोपामुद्रा ने एक दूसरे को देखकर गान्धर्व विवाह कर लिया था। अतः भय से कि सम्भवतः यह पाप हो, उन्होंने मन्त्र ५ में देवों से क्षमा-याचना की है। देवों ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। इससे प्रतीत हुआ कि गान्धर्व विवाह पाप नहीं है, अपितु शास्त्रानुकूल है।

गान्धर्व विवाह का लक्षण मनुस्मृति (३.३२) में इस प्रकार है—

इच्छया ऽन्यो ऽन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः काम-संभवः॥

अर्थात् कन्या और वर की इच्छा से परस्पर संयोग को 'गान्धर्व' (विवाह) कहते हैं। वह दो व्यक्तियों (पुरुष और स्त्री) में काम-वासना से उत्पन्न होता है।

अगस्त्य ऋषि ने वरणीय (वर्णों) संयम और कामरूपी दो भावों का सम्यक् रूप से पालन किया। इससे शिक्षा मिलती है कि पुरुष को गृहस्थ में भी संयम से रहना चाहिए, और सन्तानोत्पादन की इच्छा से ही ऋतुकाल में समागम करना चाहिये।

आगे पृष्ठ ४६ से ४६ तक ऋग्वेद (१.१७९) मन्त्रों के अर्थ तथा तत्सम्बन्धी टिप्पणी दी जाती है।

ऋग्वेद १. १७९

पूर्वीर् अहं शरदः शश्रमाणा
दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रिये जरिमा तनूनाम्
अप्यू नु पत्नीर् वृषणो जगम्युः ॥१॥

(लोपामुद्रा कहती है)—मैं दिन रात जरा लाने वाली उषाओं में बहुत से वर्षों तक श्रम करती रही। बुढ़ापा शरीरों के सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। पुरुष पत्नियों से संगम करें ॥१॥

ये चिद् धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्
साकं देवेभिर् अवदन्न् ऋतानि।
ते चिद् अवासुर् न ह्य् अन्तम् आपुः
सम् ऊ नु पत्नीर् वृषभिर् जगम्युः ॥२॥

जो पूर्वकालीन व्यक्ति सत्यनियमों के पालन करने वाले थे, (और) जिन्होंने दिव्य शक्तियों की सहायता से प्राकृत नियमों का प्रवचन (किया), वे भी समाप्त हो गए और अन्त को न पा सके, कि पत्नियाँ पुरुषों से संगम करें ॥२॥

न मृषा श्रान्तं यद् अवन्ति देवा
विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव।
जयावेद् अत्र शतनीथम् आजिं
यत् सम्यञ्चा मिथुनाव् अभ्यजाव ॥३॥

(अगस्त्य कहता है)—हमने वृथा श्रम नहीं किया, क्योंकि देव हमारी रक्षा करते हैं। हम दोनों सब विघ्नों को परास्त करें, इस

सम्बन्ध में हम सैंकड़ों फुसलाहटों वाले युद्ध को जीतें, और सम्यग्-रूपेण परस्पर मिलकर अभिगमन करें ॥३॥

नदस्य मा रुधतः काम आगन्
इत आजातो अमुतः कुतश् चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति
धीरम् अधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४॥

इधर उधर कहींसे मुझ स्तुति करने वाले और इन्द्रियों का संयम करने वाले में काम-वासना आ गई है। मुझ वीर्यवान् को लोपामुद्रा आकृष्ट करती है, और अधीर हुई मुझ धीर का ओष्ठपान (चुम्बन) करती है ॥४॥

इमं नु सोमम् अन्तितो
हृत्सु पीतम्उप ब्रुवे ।
यत् सीम् आगश्चकृमा तत् सु मृळतु
पुलुकामो हि मर्त्यः ॥५॥

मैं इस सोम (प्रजापति), जो मेरे हृदय में स्थित है, को समीप से प्रार्थना करता हूँ, कि जो कोई पाप हमने किया है, उसे वह क्षमा करे। मनुष्य बहुत कामना वाला होता है ॥५॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः
प्रजाम् अपत्यं बलम् इच्छमानः ।
उभौ वर्णाव् ऋषिर् उग्रः पुपोष
सत्या देवेष्व् आशिषो जगाम ॥६॥

(कन्द मूलादि की प्राप्ति के लिये) खोदने के साधनों द्वारा खोदते हुए, तथा प्रजा, सन्तान और बल की इच्छा करते हुए, उग्र ऋषि अगस्त्य ने दोनों (वर्ण) वरणीय (संयम और काम) का पालन किया। देवों के प्रति उसकी प्रार्थनाएँ सफल हुईं ॥६॥

टिप्पणी

उपर्युक्त मन्त्रों में आये दुरूह पदों का स्पष्टीकरण

१. वृषणः—'वृषन्' का प्रथमा वहुवचन। 'वृषु सेचने' धातु से वीर्य का सिञ्चन करने वाला युवा पुरुष 'वृषन्' कहलाता है।

२. ऋत-सापः—'ऋत' अर्थात् सत्य प्राकृत नियमों को 'सापः' पूर्णतया पालने वाले (सप् समवाये)।

३. अवासुः 'अव पूर्वक सो' धातु का लिट् प्रथम पुरुष वहुवचन। समाप्त हो गए।

४. स्पृधः—'स्पर्ध् संघर्षे' धातु से स्पृध् (स्त्री लिङ्ग) का अर्थ संघर्ष में आने वाली वाधाएँ।

५. अभ्यश्नवाव-अभि पूर्वक 'अश् भोजने' का लोट् में उत्तम पुरुष द्विवचन। अभि उपसर्ग से इसका अर्थ पराभूत या परास्त करना है।

६. शत-नीथम्—'नीथ' का अर्थ है 'trick', फुसलाने वाली सैंकड़ों छलनाएँ।

७. अभ्यजाव—अभि पूर्वक 'अज् गति-क्षेपणयोः' से लोट् उत्तम पुरुष द्विवचन। हम दोनों अभिगमन करें, अर्थात् समागम करें।

८. नदस्य—'नद अव्यक्ते शब्दे' से। नद का अर्थ 'शब्द करने वाला' अर्थात् 'स्तोता'। देखो निरुक्त (५।२)—'नद ऋषिर् नदो भवति, नदतेः स्तुतिकर्मणः।'

९. रुधतः—'रुध् आवरणे' अर्थात् रोकने के अर्थ में। रुधत् का अर्थ हुआ 'इन्द्रियों का संयम करने वाला। देखो निरुक्त (५।२) 'संरुद्ध-प्रजननस्य ब्रह्मचारिणः।

१०. लोपामुद्रा—'लुप् विमोहने' से लोपा, अर्थात् विमोहित या पथभ्रष्ट करने वाली 'मुद्रा' आकृति है जिसकी।

११ नीरिणाति–निः पूर्वक 'री गत्यर्थ' से। निः उपसर्ग लगाने से धातु का अर्थ आकृष्ट करना हो जाता है। आकृष्ट करती है।

१२. धयति—'धेट् पाने'। यहां इसका अर्थ 'ओष्ठपान' अर्थात् अधर-चुम्बन है।

१३. हृत्सु पीतम्—हृदय में पिया हुआ, अर्थात् भली-भांति स्थित है।

१४. मृळतु=मृळ् to forgive, pardon, क्षमा करे।

१५ अगस्त्य:—अग का अर्थ है 'पर्वत', और 'अस् क्षेपणे' से अगस्त्य का अर्थ है—जो अपनी शक्ति से पर्वतों को धकेल या तोड़ सकता है।

१६. खनमानः खनित्रैः—ये दोनों पद 'खन् अवदारणे' खोदने के अर्थ में हैं। खोदने के साधनों द्वारा खोदता हुआ, अर्थात् कन्दमूल आदि भोज्य सामग्री प्राप्त करने के लिये भूमि को खोदता हुआ। ये उसके वनवासी ऋषि जीवन के द्योतक हैं।

११. वर्णों—'वृञ् वरणे' से। वर्ण का अर्थ 'रङ्ग' नहीं, अपितु वरणीय भावों का अभिप्राय है।

१८. आशिषः—'आ शास् इच्छायाम्' से आशिष् का अर्थ प्रार्थना है।

——